अक्तूबर - दिसंबर २००३

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

डॉ. दामोदर खड़से, डॉ. निरुपमा राय, सत्तार मियां साहिल,

अलका अग्रवाल सिगतिया, प्रदीप बिहारी, संजीव निगम

●

आमने–सामने

संजीव निगम

१५ रुपये

With Best Compliments From :

TUBE GLASS CONTAINERS LTD.

102, H & G House,
Sector XI, Belapur, C.B.D.
Navi Mumbai - 400 614.

अक्तूबर-दिसंबर २००३
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● संपर्क ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१ ५५४१ व २५५५ ५८२२
टेलीफैक्स : २५५५ २३४८
e-mail : kathabimb@yahoo.com

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुण सक्सेना
जी-२४, शकुंतला, सेक्टर-६,
वाशी, नवी मुंबई-४०० ७०३
फोन : २७८२ ०१९९

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
१५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || पानी के रंग / डॉ. दामोदर खड़से
|| ९ || वध / डॉ. निरुपमा राय
|| १२ || बरगद / सत्तार मियां साहिल
|| १७ || जब अरुषि कहेगी...! / अलका अग्रवाल सिगतिया
|| २३ || पायदान पर / प्रदीप बिहारी
|| २६ || स्पर्श / संजीव निगम

लघुकथाएं

|| ८ || जमूरे / हरदर्शन सहगल
|| ११ || मनोवृत्ति / डॉ. गोपाल बाबू शर्मा
|| १४ || भूखा आदमी / अशोक सिंह
|| २५ || गृहस्थी / पवन शर्मा
|| २८ || पढ़ाई / राजेंद्र मोहन त्रिवेदी 'बंधु'
|| ४१ || प्यार की उम्र नहीं ! / रामशंकर चंचल
|| ४१ || एक री-टेक और / घनश्याम अग्रवाल
|| ४२ || शराफत उर्फ बीस रुपये / डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल

गीत / ग़ज़लें / कविताएं

|| २२ || दो ग़ज़लें / अक्षय गोजा
|| ३२ || तंदूर : पाशविकता की शोध / डॉ. कृष्ण बिहारी सहल
|| ३२ || इसके बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ? / अशोक सिंह
|| ३९ || मौन संवाद / उस रात / डॉ. वरुण कुमार तिवारी
|| ४० || जब भूख पर चर्चा होगी.. / अशोक सिंह
|| ४० || हाशिये पर रह रहे भूखे बदहाल लोगों से... / अशोक सिंह
|| ४० || ग़ज़ल / अक्षय गोजा
|| ४२ || ग़ज़ल / अशोक 'अंजुम'

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| २९ || आमने-सामने / संजीव निगम
|| ३३ || पुस्तक-समीक्षाएं

लेटर बॉक्स

"कथाबिंब" का जुलाई-सितंबर ०३ का अंक कुछ पढ़ लिया है और कुछ पढ़ना शेष है. पत्रिका सरल, सुंदर, संतुलित और सुव्यवस्थित है. 'कुछ कही, कुछ अनकही' पढ़कर तो सुमन जी की पंक्तियां याद आती हैं,

"कवि की अपनी सीमाएं हैं,
कहता जितना कह पाता है।
कितना भी कह डाले लेकिन,
अनकहा अधिक रह जाता है।"

अस्तु, आप कहते रहिए. कहना आपका कर्म है.

'लगाव' कहानी पढ़कर बड़ोले जी और 'लगाव' दोनों से लगाव हो गया है. 'पत्थर की अहिल्या' को पढ़कर मैं स्वयं पत्थर हो गया हूं. अलका जी की 'जब अस्रषि कहेगी...!' पढ़कर तो मानो अलका जी ही सामने आ गयीं. पहले 'आमने-सामने' में उनकी आत्मरचना पढ़ी, फिर कहानी. कहानी में उनका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता रहा. शेष कहानियों को पढ़ूंगा. अन्य विधाओं की रचनाएं भी आलोच्य हैं. इतने वर्षों से निकल रही, 'कथाबिंब' को मैं अब ढूंढ़ पाया हूं, पछतावा होता है.

अनार सिंह वर्मा

अंडौआ नगला, मुवारिकपुर माफी, एटा-२०७ १२४ (उ. प्र.)

"कथाबिंब" जुलाई-सितंबर ०३ की सभी कहानियां, कविताएं, लघुकथाएं स्तरीय एवं पठनीय हैं. कई रचनाएं बेहद पसंद आयीं. संपादकीय में आपने जो कुछ दर्ज किया है, वह आम आदमी की चिंता है.

श्री हसन जमाल का पत्र छापकर आपने अच्छा किया है. ऐसे लोग घोर सांप्रदायिक होते हैं. उन्हें आप पत्रिका न ही भेजें तो ठीक. अब यह पूर्णतः स्पष्ट हो चुका है कि सांप्रदायिकता फैलानेवाले, संसद पर हमला करने वाले, गोधरा में कार सेवकों को जलाने वाले, मुंबई में बमकांड करने वाले, कश्मीर के अमन-चैन को समाप्त करने वाले, जामा मस्जिद से भारतीयता के प्रति विष वमन करनेवाले इत्यादि कौन लोग हैं !

'कथाबिंब' के वैचारिक तेवर से अनेक रचनाकारों को सद्ज्ञान प्राप्त होगा.

जनार्दन यादव

नरपतगंज, अररिया-८५४ ३३५ (बिहार)

"कथाबिंब" प्राप्त हुई. पत्रिका का चतुर्थ पृष्ठ खोला और 'कुछ कही, कुछ अनकही' (जनवरी-जून ०३) को एक सांस में पढ़ गया. जो कुछ आपने लिखा, अंतर्मन को छू गया. अपनी शेष प्रतिक्रिया पत्रिका को पूरी पढ़ने के बाद लिखूंगा.

अमीनुद्दीन

२४०, कैला कॉलोनी, रेल्वे स्टेशन के पास, धौलपुर-३२८ ००१

"कथाबिंब" के जुलाई-सितंबर ०३ के अंक में हर बार की तरह पठनीय, सटीक एवं सार्थक सामग्री का चयन संपादक की अन्वेषी, मूल्यपरक, पैनी दृष्टि का ही परिणाम है. फलतः साहित्यिक दायरों में अपनी जोरदार धमक का अहसास कराती हुई यह पत्रिका लगातार एक के बाद एक मील के पत्थर तय करती हुई अपना मार्ग प्रशस्त करती हुई परिलक्षित होती है. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में गहन राष्ट्रीयता तथा अपनी सांस्कृतिक विरासत को एक वैचारिक आंदोलन के रूप में खड़ा करने की पहल, शक्ति, भीतर घुमड़ने वाले तंतुओं को सत्य की जमीन पर उद्घाटित करना आपकी संपादकीय क्षमता को प्रतिबिंबित करता है.

आपने जुलाई-सितंबर ०३ के अंक में 'शेष' के संपादक हसन जमाल का पत्र छाप कर अच्छा ही किया. इससे कम से कम उनके दिमाग की संकीर्णता से साक्षात्कार तो हो सका. आश्चर्य होता है, किस प्रकार उन्होंने साहित्यिक दायरों में प्रवाहित हो रही 'कथाबिंब' जैसी श्रेष्ठ एवं स्तरीय सामग्री संजोये हुए इस सरिता को कचरा बता कर नकार दिया. आपने जनवरी-जून ०३ के अंक में 'कुछ कही, कुछ अनकही' में मानवाधिकार आयोग की कार्यप्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए उसे कटघरे में खड़े करने का प्रयास करते हुए एक नग्न सत्य को ही उद्घाटित किया है. बिल्कुल सही है यह बात कि मानवाधिकार आयोग की भूमिका हमेशा संदिग्ध रही है. बहुत पहले पंजाब में जब निर्दोष हिंदुओं को बसों में से उतार-उतार कर मारा जाता था तो मानवाधिकार आयोग के सदस्यों को कोई तकलीफ़ नहीं होती थी, दूसरी ओर जब कोई एक-आध व्यक्ति आतंकवादी होने के भ्रम में या फिर आतंकवादी ही पुलिस की गोली से मारा जाता तो मानवाधिकार आयोग की सुई पुलिस के सिपाही अथवा अधिकारी की ओर घूमती देर नहीं लगती थी. कश्मीर में यही तो हो रहा है. हजारों हिंदू मारे गये, मां-बेटी, बहुओं को बलात्कार का शिकार होना पड़ा. यदि कहीं पुलिस की ग़लती से कोई निर्दोष नागरिक मारा जाता तो मानवाधिकार आयोग आगे आ जाता. कितने ही निर्दोष सुरक्षाकर्मी आये दिन आतंकवाद की बेदी पर अपने प्राणों का बलिदान कर रहे हैं. गुजरात को ही लीजिए, मानवाधिकार आयोग को गोधरा ट्रेन में बच्चों, बूढ़ों, जवानों तथा औरतों की झुलसी हुई लाशें नज़र नहीं आयीं, उन पर तो मानवाधिकार आयोग को दया नहीं आयी, बेस्ट बेकरी कांड की ही याद क्यों आयी ? जिन लोगों को निर्ममता से गाड़ी रोक कर जलाया गया उसमें भी तो कइयों के पूरे के पूरे परिवार थे. गोधरा कांड के हत्यारों के बारे में मानवाधिकार आयोग ने कुछ भी नहीं कहा, उसकी आंख खुली तो सिर्फ बेस्ट बेकरी कांड के दोषियों को सजा देने के लिए. वस्तुतः एक बात तो प्रमाणित है कि मानवाधिकार आयोग में नीर-क्षीर विवेक वाले लोग नहीं हैं, शायद या तो तथाकथितधर्मनिरपेक्षवादी हैं या फिर वामपंथी. इस विषय पर खुल कर अपनी बात कहने के लिए मैं संपादक को बधाई देता हूं. आपने मीडिया पर भी कई सवालात खड़े किये हैं.

जिस प्रकार मानवाधिकार आयोग अपनी निष्पक्षता खो चुका है उसी प्रकार मीडिया उससे भी दो उंगल ऊपर जाकर पत्रकारिता के मूल गुण निष्पक्षता को तिलांजलि दे चुका है. आजकल पत्रकार सही वस्तु-स्थिति का भान नहीं कराता अपितु एक पक्षीय विचारधारा से अनुप्राणित हिंदू विरोधी प्रचार में वाहवाही लूटना चाहता है. ऐसा लगता है पूरे मीडिया पर वामपंथी लोगों का कब्जा है. सही और एक सच्चाई को आपने कहने का साहस किया है, यह देखकर अच्छा लगा.

इस अंक की सभी कहानियां स्तरीय एवं पठनीय हैं जो पाठक के मन को छूती हैं. कुत्ते के पिल्ले से 'लगाव' सीधी-सरल भाषा में कही गयी अच्छी कहानी है. 'पत्थर की अहिल्या' नारी की पीड़ा, सहनशीलता तथा उसकी आंतरिक अनुभूतियों को उजागर करती है. वासुदेव की कहानी 'प्रेत-मुक्ति' नारी की विवशता तथा पुरुष के काम-लोलुप, वहशीपन का चित्र प्रस्तुत करती है. आज के बदलते हुए सामाजिक-पारिवारिक परिवेश में यह ज़रूरी हो गया है कि नयी पीढ़ी अपने परिवार से अलग होकर अपना घोंसला तैयार करे. 'अपना नीड़-अपना आसमान' कहानी की यही ज़मीन है. अपनी सुंदर कलात्मक भाषा के कारण ही कहानी बेहद प्रभावित करती है. नेपाली कहानी 'लावारिस' की विषय-वस्तु यद्यपि पुरानी है पर नये धरातल पर प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है. नरेंद्रकौर छाबड़ा की 'महत्त्व' तथा महीपाल भूरिया की 'मेरा वोट कहां गया...?' लघुकथाएं अंक को समृद्धता प्रदान करती हैं. गीत, ग़ज़ल तथा कविताएं और अन्य स्तंभ भी पत्रिका की साहित्यिकता में वृद्धि करते हैं.

✣ डॉ. सुरेंद्र गुप्त

आर. एन-७, महेश नगर, अंबाला छावनी-१३३००१

✣ "कथाबिंब" का जुलाई-सितंबर ०३ अंक मिला. सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई. इस बीच व्यक्तिगत कारणों से लेखन ही नहीं पढ़ना भी प्रभावित हुआ था. 'कथाबिंब' के इस अंक से अब पुनः सक्रिय होने की आशा है.

'पत्थर की अहिल्या', 'प्रेत मुक्ति' तथा परशु प्रधान की कहानी 'लावारिस' अच्छी कहानियां हैं. अलका अग्रवाल की कहानी 'जब अरुंधति कहेगी...!' का प्रथम भाग अच्छा लगा. आशा है शेष भाग भी पाठक को प्रभावित करेगा.

'दिल और दिमाग', 'अस्तित्व की तलाश' तथा 'मूल मंत्र' लघुकथाएं थोड़ी देर में पढ़कर अधिक देर तक सोचने और चिंतन करने को विवश करती हैं.

'कुछ कही, कुछ अनकही' ने मुझे सदैव प्रभावित किया है. हसन जमाल का पत्र आपने छाप दिया. लगता है वे उन सेकुलर लोगों में से हैं जो अफगानिस्तान में भगवान बुद्ध की मूर्तियों को डायनामाइट से उड़ाने पर कुछ नहीं बोलते. जो गोधरा में ट्रेन में आग लगाकर कार सेवकों को जलाने पर खामोश रहते हैं. जो मुंबई बम विस्फोट पर आंख मूंद लेते हैं और ओसामा बिन लादेन को 'गाजी कुफ्रा शिकन' कहकर प्रोत्साहित करते हैं. अयोध्या में शताब्दियों से विवादित ढांचे के ढह जाने पर उसे मस्जिद बताकर देश में और बाहर भी सांप्रदायिक सौहार्द को बिगाड़ने का काम यही सेकुलर लोग करते हैं. जब तस्लीमा नसरीन बांग्ला देश में हिंदुओं पर अत्याचार और मंदिरों को लूटने और तोड़ने की बात लिखती हैं तो उसे देश निकाला दे दिया जाता है और जब वी. एन. राय पुलिस अधीक्षक होते हुए 'शहर में कर्फ्यू' लिखकर यह प्रसारित करते हैं कि इलाहाबाद में कर्फ्यू के दौरान पुलिस ने तथा हिंदुओं ने मुसलमानों को बहुत मारा है तब इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती और वह बिल्कुल सेकुलर हो जाता है. पुस्तक का उर्दू में अनुवाद भी छापा जाता है.

गजेंद्र यथार्थ ने सही राय दी है कि सेकुलरिज्म और धर्म आदि की चर्चा को विस्तार दिया जाय. आज स्थिति इतनी बदल गयी है कि सभी धर्मों को बराबरी का दर्जा देने की बात करना सांप्रदायिकता है और समाज और देश को धर्म और जाति के आधार पर बांटने वाले सेकुलर हो गये हैं. ऐसे सेकुलर लोगों से सावधान रहने की आवश्यकता है.

✣ नरसिंह नारायण

१३२६, विवेकानंद नगर,
सुलतानपुर २२८ ००१ (उ. प्र.)

(कुछ और प्रतिक्रियाओं के लिए कृपया पृष्ठ ४३ देखें)

✣ 'कथाबिंब' के जनवरी-जून ०३ अंक में प्रकाशित डॉ. वीरेंद्र कुमार बसु के पत्र को पढ़कर अचानक महसूस हुआ कि अगर किसी चीज़ या व्यक्ति को श्रेष्ठ साबित करना है तो उसकी तुलना तुरंत किसी प्रचलित चीज़ से कर दी जाये. बसु साहब को शायद याद नहीं कि 'सारिका' कितनी कमलेश्वरमय हो गयी थी. उसके बंद होने का यह भी एक कारण रहा हो शायद ! 'हंस' अपनी ज़मीन तो बना चुकी है पर विवादास्पद स्थितियों से घिरी रहती है. 'कथाबिंब' न तो अरविंदमय है न विवादास्पद . . .इसीलिए अछूती, स्तरीय और श्रेष्ठ रचनाओं के प्रकाशन से परिपूर्ण पत्रिका है. अपने आप में निर्धन इस पत्रिका ने पच्चीस स्वर्णिम वर्ष पूरे किये हैं, इस बात की तुलना किसी भी अन्य पत्रिका से नहीं की जा सकती. 'कथाबिंब' कभी भी समझौता नहीं करती और श्रेष्ठ लेखन का स्वागत करती है, यह एक पाठक की हैसियत से मैं गहराई से अनुभव करती हूं. 'कथाबिंब' के उन्नत भविष्य की कामना सहित.

✣ संतोष श्रीवास्तव

बी-७०२, निर्मल टॉवर, गौरव गैलेक्सी फेज II के पीछे,
मीरा रोड (पूर्व), ठाणे - ४०११०७

कुछ कही, कुछ अनकही

पिछले अंक के प्रकाशन के ठीक तीन महीने बाद यह अंक छप सका है. इसका अर्थ यही हुआ कि गाड़ी वहीं की वहीं थमी हुई है. इस अंक के साथ 'कथाबिंब' के प्रकाशन के २४ वर्ष पूरे हुए हैं. यह अपने आप में एक उपलब्धि मानी जा सकती है, पर इससे हमें किसी तरह की संतुष्टि नहीं है. वैसे यह सच है कि अगर हिंदी अकादमियों से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं को छोड़ दें तो पूरे देश में इतने लंबे समय तक प्रकाशित होने वाली हिंदी की पत्रिकाओं की संख्या दस-बारह से शायद ही अधिक हो !

●

'कथाबिंब' विशिष्ट कहानियों की त्रैमासिक प्रस्तुति है. कहानियों के चयन में हमेशा से हमारी यह सोच रही है कि हर अंक में प्रस्तुत प्रत्येक कहानी कुछ अलग से, कुछ नया कहती नज़र आये. अंक की पहली कहानी 'पानी के रंग' में डॉ. दामोदर खड़से ने 'काले-पानी' को एक अलग रंग में प्रस्तुत किया है. यहां पाषाण युग से लेकर भारत की आजादी का इतिहास एक साथ दिखाई देता है. 'वध' (डॉ. निरुपमा राय) कहानी की नायिका कमली ग्लानि से ग्रस्त है किंतु जब उसे यह अहसास होता है कि आततायी पति को मार कर उसने ग़लत नहीं किया तो एकबारगी वह आत्मग्लानि से उभर जाती है. सत्तार मियां साहिल की कहानी 'बरगद' एक ऐसे भावुक लड़के की कहानी है जिसका सारा वजूद 'आपा' मय हो गया. सोते-जागते वह सिर्फ़ आपा के ख़्यालों में डूबा रहता है. 'आपा' का साया बरगद की तरह उस पर छाया हुआ है. अलका अग्रवाल की कहानी की समापन कड़ी में प्रिया का मोहभंग अपनी पराकाष्टा पर पहुंचता है जब पुत्र अस्सीम शादी करके पत्नी के साथ विदेश चला जाता है. इसी अस्सीम को बड़ा करने में प्रिया ने अपना जीवन होम किया था. मग़र लड़ाई यहां ख़तम नहीं होती ! प्रदीप बिहारी की मैथिली कहानी 'पायदान पर', पायदान पर खड़े हुए उन लोगों की कहानी है जो कठिन से कठिन परिस्थिति में भी स्वयं को एडजस्ट कर लेते हैं. संजीव निगम की कहानी 'स्पर्श' कई स्तरों पर मन के कोने-कोने को छू जाती है.

●

ऐसा हमेशा होता है कि बहुत समय तक स्थितियां एक-सां नहीं रहतीं, उनमें बदलाव आता रहता है. पर बहुत बार यदि आपकी संग्राहिता तीक्ष्ण न हो तो यह बदलाव अक्सर हम महसूस नहीं कर पाते क्योंकि हम पूर्वाग्रहों से ग्रसित रहते हैं. एक तरह का 'निगेटिज़्म' या कहिए कि 'सिनेसिज़्म' हमारे ऊपर छाया रहता है. बात-बात में लोग कहने लगते हैं कि 'अब कुछ नहीं हो सकता', 'स्थितियां बहुत ख़राब होती जा रही हैं' आदि. इस तरह हम किसी भी चीज़ के बारे में 'ऑब्जेक्टिव' तरीके से सोचना बंद कर देते हैं.

१९७५ में आपात्काल की घोषणा से लेकर लगभग बीसवीं सदी के अंत तक भारत ज़बरदस्त अस्थिरता के दौर से गुज़रता रहा. देश ने कई प्रधानमंत्री देखे - मोरारजी देसाई, चौधरी चरण सिंह, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, विश्व नाथ प्रताप सिंह, चंद्रशेखर, नरसिम्हा राव, अटल बिहारी बाजपेयी, देवेगौड़ा और गुजराल. जरा-जरा सी बात पर संविधान के अनुच्छेद ३५६ का उपयोग कर प्रांतीय सरकारें बरखास्त की जाती रहीं. अनावश्यक ही अनेक बार चुनाव हुए. जो धन विकास कार्यों में लगना चाहिए था उसका अपव्यय चुनाव कराने में हुआ. जोड़-तोड़ की राजनीति से कई नेता उभर कर आये पर वे ज्यादा दिन नहीं चल पाये. जनता को सिर्फ़ खोखले वायदे और नारे दिये गये - खलिस्तान, कश्मीर की समस्या और राम मंदिर-बाबरी मस्जिद की समस्याएं इसी दौरान पैदा हुईं. ये सब ग़लत निर्णयों के परिणाम हैं. इसी दौरान खाड़ी युद्ध और घोटालों ने देश की अर्थ-व्यवस्था चौपट कर दी. देश का सोना बाहर गिरवीं रखना पड़ा. वर्ष १९८८ में एक डॉलर १२ रुपयों का हुआ करता था. वही सन २००० आते-आते ४८ रुपये का हो गया.

इस पृष्ठभूमि में आइए, पिछले ४-५ सालों में हुए बदलाव पर अब कुछ दृष्टिपात करें. केवल डॉलर-रुपये का अनुपात ही निरंतर कम नहीं हुआ है. पांच वर्षों में विदेशी मुद्रा भंडार दो अरब से बढ़कर १२० अरब हो गया है, जबकि पोखरण विस्फोटों के बाद ऐसी शंकाएं व्यक्त की जा रही थीं कि प्रतिबंधों के कारण आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जायेगी, पर हुआ इससे उल्टा. निर्यात में भी अतुलनीय वृद्धि हुई है. विश्व की कार बनाने वाली पंद्रह बड़ी कंपनियां आज भारतीय फर्मों से सामान खरीदती हैं. हीरो हांडा कंपनी प्रति वर्ष १७ लाख मोटर साइकिलें बना रही है. अमरीका और जापान के अलावा भारत दुनिया का तीसरा देश है जो अपना सुपर कंप्यूटर बनाने में सक्षम है. हमारी गिनती विश्व के उन छः देशों में है जो अंतरिक्ष में अपने उपग्रह स्वयं छोड़ते हैं. यहां तक कि हाल में जर्मनी और बेल्जियम के लिए भी हमने उपग्रह प्रक्षेपित किये हैं. हमने घोषणा की है कि अब विदेशी ऋण लेने की ज़रूरत नहीं है. स्थिति यह है कि १० से ११ देशों को हमने ऋण दिया है. पहले का विदेशों से लिया ऋण आज हम समय से पहले चुका रहे हैं. 'स्वर्णिम चतुर्भुज' की योजना को पहले सोचना भी संभव नहीं था लेकिन पर्याप्त धन की उपलब्धता ने इस योजना के कार्यान्वयन को संभव कर दिखाया है. अमरीका में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम की ओर आने-जाने वाली सड़कों का एक बड़ा जाल है जैसा ग्राफ़ शीट में रेखाएं होती हैं. सारी अमरीकी अर्थव्यवस्था इन्हीं महामार्गों पर निर्भर करती है.

जन साधारण अपने विचारों में लचीले अवश्य होते हैं लेकिन प्रायः उनकी स्मृति क्षीण होती है. कुछ वर्ष पहले तक रेज़गारी की बहुत किल्लत हुआ करती थी. हर चीज़ के लिए कोटा का इंतज़ार करना पड़ता था या फिर लाइन लगानी पड़ती थी. पहले रसोई की गैस के सिलिंडर के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी. रेल्वे का आरक्षण कराना पहले की अपेक्षा बहुत आसान हो गया है. अब किसी

(. . . शेष पृष्ठ ४४ पर देखें)

कहानी

पानी के रंग

खिड़की खोलते ही अदिति उछल पड़ी, "उधर देखिए कितने सुंदर पहाड़ हैं..."

पापा ने देखा और अदिति की बात को और आगे बढ़ाते बोले, "आगे देखो, कितनी दूर तक पानी ही पानी." अदिति का इस तरह उछलना उन्हें बहुत अच्छा लगा. एक लंबे समय के बाद वह अपनी स्वाभाविक आवाज और सामान्य हाव-भाव में थी. अदिति की मां ने राहत की सांस ली. उनके चेहरे से संतोष स्पष्ट देखा जा सकता था.

अदिति का बातूनी रूप फिर खिल उठा, "पापा, इस होटल में यह कमरा कितना खास है. एक ओर से ऊंचे-ऊंचे पेड़ों से भरे बड़े-बड़े पहाड़ हैं और दूसरी ओर दूर-दूर तक फैला सागर हिलोरें लेता हुआ इस दीप को सहला रहा है..."

पापा ने केवल मुस्कान बिखेरी. आंखों से सहमति जताई. अदिति की भाषा सुनकर वे पुलकित हुए. बस उन्होंने इतना ही कहा, "अभी नौ बज रहे हैं...थोड़ा फ्रेश होकर नाश्ता-चाय लेते हैं और आज दिन भर का कार्यक्रम बना डालते हैं." जल्दी...हमें थोड़े समय में बहुत ज़गह जाना है." पापा को लगा कि अंडमान आना सार्थक हो गया. अदिति एक लंबे समय से उदास थी. उसका मुख्य कारण था, चुनाव वाले दिन एक उम्मीदवार की हत्या और उसके कॉलेज में एक प्रेमी लड़के द्वारा उसी कॉलेज की प्रेमिका लड़की की दिन-दहाड़े पिस्तौल से हत्या.

दोनों घटनाओं से अदिति का प्रत्यक्ष संबंध कुछ नहीं था. परंतु वह बचपन से हर संबंधों में, घटनाओं में, बातों में अपने आपको इतना जुड़ा पाती है कि न चाहते हुए भी वह इन सारी बातों को अपनी संवेदनाओं से अलग नहीं कर पाती.

अदिति के पिता ने चाहा भी यही था कि अदिति पूरी तरह मौलिक, स्वतंत्र और खुश रहे. उन्होंने उस पर किसी तरह की अपनी इच्छा-आकांक्षा कभी नहीं लादी. न ही कभी रोका-टोका. इसका परिणाम अदिति के व्यक्तित्व में देखा जा सकता है. छरहरा बदन और सटीक तार्किकता उसने अपने पापा के जीने के तौर-तरीके के प्रतीक के रूप में पायी. स्पष्ट और सपाट कहना उसकी दूसरी खूबी है. उसकी बात मानना पापा की मजबूरी. खूबसूरत मजबूरी. जिसे मानकर वे खुश होते हैं.

"इसीलिए इस साल छुट्टियों में कहां जायें...?"

"अंडमान" अदिति ने तपाक् से कहा था. कहते ही उसे लगा था कि बहुत जल्दी कह दिया. पहले यह तो जान लेती कि पिताजी ने क्या सोचा है. पूछ ही लिया, "पापा, आपने कुछ सोच रखा है ? मेरे मुंह से तो अचानक निकल गया. आप कहीं और सोच रहे होंगे तो वह जगह भी अच्छी ही रहेगी." अदिति मां की ओर देखती बोली.

"तूने तो मेरा काम आसान कर दिया...इस ज़गह के बारे में तो मैंने सोचा भी नहीं था...बाई दि वे...तूने इस ज़गह के बारे में कैसे तय कर लिया ?" उसके पापा ने अनायास ही पूछ लिया.

"दरअसल पापा...उस दिन मैंने जब एक उम्मीदवार को अपनी आंखों के सामने खून होते देखा, तब मैं बहुत विचलित हुई. मैं लाइब्रेरी में अधिक समय बैठने लगी. मुझे लगा कि मुझे भारत की आज़ादी की कहानी ठीक से नहीं मालूम. बस इसी तलाश में मुझे सेल्यूलर जेल, काला पानी और अंडमान की दुनिया अजीब ढंग से लुभाने लगे. इसी बीच पर्यटन विभाग का एक विज्ञापन और सुनहरा दृश्य मैंने देखा...बस इच्छा मन में बस गयी. आपने पूछा और मन की बात बाहर आ गयी."

डॉ. दामोदर खड़से

"गुड...तुमने बहुत अच्छी ज़गह तय कर ली है. चलो..." इतना कहकर अदिति के पापा आफिस के लिए निकल गये थे.

खिड़की से टिकी अदिति सोच रही थी, इतनी जल्दी उसका सपना कैसे साकार हो गया. पापा के बारे में उसका गर्व और बढ़ गया. पापा उसके लिए सब कुछ हैं.

पापा को भी लगता है कि वे आज अदिति की इच्छा का सम्मान करने की स्थिति में हैं. आजकल कंपनी के कामकाज में काफी उलझनें बढ़ गयी हैं, लेकिन इस तरह की सुविधाएं कंपनी हर चार साल में देती है, वह उन्हें आज बहुत उपयोगी लगी.

उनका हर काम बड़े योजनाबद्ध ढंग से होता है. होटल का कमरा भी ऐसा बुक कराया, जो पूरे होटल में सबसे अच्छी जगह है.

नाश्ता करके जैसे ही तीनों होटल से बाहर आये उनके लिए वैन तैयार थी. वैन के पास खड़ी होकर अदिति ने अपने होटल पर निगाह दौड़ाई और अचानक उसके मुंह से निकल पड़ा, "होटल टील हाउस."

उसे लगा, वह इस होटल को जानती थी पहले से ही. कहीं इसके बारे में सुना है. ओह पापा कितना खयाल रखते हैं. उसी ने कहीं पढ़ा था और पापा से बात की थी. पापा ने बिना कुछ

बताये वहीं बुकिंग करायी.

❑

पिछले साल भर से अदिति बहुत अनमनी-सी थी. उसका ग्रेज्युएशन पूरा हो गया था. पापा चाह रहे थे कि वह कंप्युटर का कोई कोर्स कर ले. मां की इच्छा थी कि कोई अच्छा घर ढूंढ़कर उसके हाथ पीले कर दें.

अदिति चाह रही थी कि पहले वह अपना पोस्टग्रेज्युशन कर ले. कोई छोटी-मोटी नौकरी भी चलेगी और साथ में कंप्युटर के प्रति भी वह आकर्षित थी. पापा ने उसके लिए कंप्युटर खरीद दिया था. पर वे किसी प्रोफेशनल ट्रेनिंग के पक्ष में थे.

परंतु, अदिति रोज़ सुबह अखबार पढ़कर बहुत दुखी हो जाती. उसका मन बेचैन हो जाता. पापा से वह बातें भी करती. जिनके बारे में उसके मन में आस्था होती उसे लेकर कुछ उल्टी-सीधी ख़बरें. लोकतंत्र में आस्था की बात पापा जगाते रहते, उधर वह देखती कि भ्रष्ट नेताओं के रोज़ चर्चे हैं अखबारों में. नौकरशाही भी पीछे नहीं है. समाज के कुख्यात लोगों ने सरकार की बागडोर अपने कब्जे में ले ली है. हवाला में - पार्टी, सिद्धांत और आदर्शों को ताक में रखकर सभी राजनैतिक दल इसमें शामिल हैं. कॉलेज में प्रिंसिपल के खिलाफ प्रोफेसर हैं. कुछ आरोप सही भी लगते हैं. और उस दिन तो उसे अपनी आंखों पर भरोसा ही नहीं रहा यह पढ़कर कि एक प्रोफेसर ने किसी विशिष्ट विषय में नंबर बढ़ाने के लिए अपनी छात्रा के सामने अशिष्ट मांग ही रख दी. और तो और खेल में भी भ्रष्टाचार ने कदम रख दिये. क्रिकेट से बड़ा प्यार है उसे. पर अब खेल की ज़गह केवल समाचार हैं. क्या करे वह. उसने अपने आपको कितना काट लेना चाहा. पर अख़बार, टीवी, कॉलेज की मंडली चारों ओर चर्चा ही चर्चा.

इसी बीच उसने पर्यटन विभाग का विज्ञापन पढ़ा और उसे अंडमान की धरती ने मोह लिया. मन ही मन वह सोचने लगी कि वहां ऐसा कुछ नहीं होगा. लोग प्राकृतिक जीवन के करीब होंगे. तथाकथित प्रगति के पीछे वहां भागमभाग नहीं होगी. शांति होगी. ट्रैफिक जाम नहीं होगा. प्रदूषण नहीं होगा. दूर-दूर फैली होगी हरियाली, समुद्र की लहरें, खुली हवा और उन हवाओं में होगी...देशप्रेम की गाथाएं, शौर्य की महागाथाएं, सावरकर का दृढ़ संकल्प, शेरखान का अपार शौर्य...

❑

अदिति के मन-मस्तिष्क में अंडमान का ऐतिहासिक वैभव उतर रहा था. विमान समुद्र की बहुत ऊंचाई पर था. नीला सागर, सफेद लहरों की छरहरी रेखाओं से अपने जीवित होने का अहसास हज़ारों फुट की ऊंचाई पर उड़ रहे विमान को देता रहता. भीतर उद्घोषणा हुई और विमान नीचे की ओर झुका. अदिति का संपूर्ण अस्तित्व ही खिड़की से बाहर था.

"पापा, उधर देखिए कैसे छोटे-छोटे द्वीप. हरियाली के धब्बे

एम.ए., एम. एड., पी-एच.डी.(हिंदी)

लेखन : देश की प्रमुख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का नियमित प्रकाशन.

प्रकाशन : कथा संग्रह : 'भटकते कोलंबस', 'पार्टनर', 'जन्मांतर गाथा', 'आखिर वह एक नदी थी'; उपन्यास : 'भगदड़', 'काला सूरज', 'खंडित सूर्य' (मराठी संस्करण), 'घरोघरी' (म. सं.); कविता संग्रह : 'अब वहां घोंसले हैं'; यात्रा व भेंट वार्ताएं : 'जीवित सपनों का यात्री'; राजभाषा विषयक पुस्तकें : 'राजभाषा प्रबंधन' : 'संदर्भ व आयाम', 'व्यावहारिक अनुवाद', 'कार्यालयीन व व्यावहारिक हिंदी'.

शीघ्र प्रकाश्य : 'इस जंगल में' (कहानी संग्रह), 'नदी कभी नहीं सूखती' (कविता संग्रह), 'संवादों के बीच' (भेंट व अन्य वार्ताएं), 'अनुभवामृत' - डॉ. ग. वा. तगारे की पुस्तक का हिंदी अनुवाद, 'मराठी की विशिष्ट कहानियां' - अनुवाद व संपादन (२५ कहानियों का संकलन).

विशेष : अनेक मराठी व अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी अनुवाद. विविध भारती, दूरदर्शन व ईटीसी से प्रसारण. विद्यालयों / महाविद्यालयों में रचनाओं का पाठ्यक्रमों में समावेश. अनेक समितियों के सलाहकार.

विदेश यात्रा : "विश्व हिंदी न्यास" न्यूयॉर्क के वार्षिक अधिवेशन में उद्घाटन वक्तव्य एवं संगोष्ठी में सहभाग. वाशिंगटन में आयोजित कवि-सम्मेलन में कविता-पाठ. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विभिन्न भागों की साहित्यिक यात्रा -२००२.

संप्रति : एक राष्ट्रीयकृत बैंक में सेवारत.

की तरह...इधर देखिए पानी का रंग किस तरह काला-नीला और मटमैला दिखाई दे रहा है..."

पापा को भी आश्चर्य हुआ. एक ही द्वीप के इस सामने वाले कोण में पानी का रंग अलग-अलग कैसे है ? वे सोचने लगे कि "काला पानी" नाम क्या इस पानी की वजह से होगा. जो भी हो अदिति अभी से खुश है. उन्हें बहुत अच्छा लगा.

पोर्टब्लेयर पर उतरते ही, सामान लेकर जैसे ही बाहर आये - एक तख्ती अदिति का ध्यान खींच गयी "होटल टील हाउस' पापा उस आदमी के पास गये. मालूम हुआ उन्हें ही लेने आया था वह.

वैन में तीनों बैठ गये. हल्की बूंदाबादी थी. अदिति पूरे मन से सब कुछ निहार रही थी. कितना अच्छा है माहौल. सामान्य-सी सड़कें, कस्बे-सी राजधानी, न शोरगुल न वाहनों का बेतहाशा धुंआ. चारों ओर घने-हरे वृक्ष, लोगों के चेहरों पर हल्की-सी हंसी. फिर अदिति को लगा, यह उसके मन का आभास लोगों के चेहरों तक पहुंचा होगा. मन ही मन सोचती रही वह - किसने यह बात फैलाई - यहां सज़ायाफ्ता लोगों का समूह रहा करता था. इतने निर्मल लोगों के पूर्वज अपराधी कैसे हो सकते हैं. फिर खुद ही बोल पड़ी - अंग्रेजों ने अपने को स्थापित करने के लिए जो भी किया, क्या कम था.

"क्यों कैसे लगा इस धरती का पहला स्पर्श ?" पापा की आवाज से चौंकी वह.

"बहुत अच्छा...मज़ा आ गया." अदिति फुदक उठी. मां संतुष्ट मुस्कान बिखेर कर सामान टटोलने लगी - निगाहों से. सब ठीक है. देखते-देखते दस मिनट के भीतर वे अपने होटल के सामने थे.

बाहर निकलने में उन्होंने बिल्कुल समय नहीं गंवाया. वैन के ड्राइवर ने बताया कि आज बारिश थम गयी है इसलिए ऐसे द्वीप में जाना बेहतर होगा जहां आदिवासी आज भी आदिम स्थिति में रहते हैं. अदिति ने उनके बारे में पढ़ा ज़रूर था. तब भी वह दुखी हुई थी, अब तो देखने की बारी है - रुखरू. उसने कुछ नहीं कहा और थोड़ी ही देर में वे एक छोटे से बंदरगाह पर थे जहां से उन्हें आगे जाना था.

मोटरबोट का आनंद उसने विशेष रूप से उठाया. अब तक वह झील या बांध में बोटिंग कर चुकी थी. पर साक्षात् नीले सागर में समुद्री हवाओं के बीच में उछलती लहरों और हिचकोलों के बीच से गुज़रने का उसका यह पहला ही अवसर था. कोई पंद्रह मिनट में क्षितिज से एक हरा-भरा द्वीप उभरकर सामने आने लगा.

द्वीप के बाद द्वीप उभरते रहे. बस, मोटर बोट और पैदल. कहीं-कहीं टैक्सी या मिनी बस. देखते-देखते पांच दिन, पांच पल की तरह काल की गर्त में समा चुके थे. विमान फिर चेन्नई की दिशा में उड़ान भर रहा था. पापा ने खिड़की की एक सीट हासिल कर ही ली थी. पर वह अकेली थी. मां-पापा को अलग बैठना पड़ा.

सीट की ओर बढ़ते हुए पापा ने कहा था, "इन्जॉय यूअरसेल्फ"

"आप भी साथ होते तो..."

"ठीक है मां ने कहा." दो सीट ही तो पीछे हैं

"आने के बाद किसी से रिक्वेस्ट करेंगे...एडजस्ट हो जायेगा." अदिति ने कहा था.

"कोई बात नहीं बेटा." पापा ने निश्चिंत किया था.

उसके बगल में जो दंपति आया वह वृद्ध था. अपनी सीट ढूंढने में ही उन्हें झुंझलाहट हो रही थी. कुछ थके-थके से लग रहे थे. अपनी सीट पर बैठकर उन्होंने निःस्वास छोड़ा. एक-दूसरे की ओर देखकर उन्होंने राहत की सांस ली और निश्चिंत होकर बेल्ट बांधने लगे. उनकी यह हलचल अदिति गौर से देख रही थी. चाहकर भी वह उन्हें पीछे बैठने का अनुरोध करने की हिम्मत नहीं जुटा पायी.

अदिति ने मुड़कर पीछे देखा. पापा की निगाह उसी पर थी. हाथ से संकेत कर मानो वे कह रहे हों, "कोई बात नहीं, बी कंफरटेबल !"

अदिति ने फोटो पोर्टब्लेयर में ही धुलवा लिये थे. और भी जो अच्छे लगे थे वहीं से खरीद भी लिये थे. अकेले में वह अपना अलबम खोलकर अभी-अभी बीता अपना इतिहास निहारने में लग गयी थी. वह चारों ओर से एक विशिष्ट रोमांच का अनुभव कर रही थी.

फोटो का अलबम खोलने से पहले उसने खिड़की से बाहर नज़र घुमाई. विमान बादलों में घुस गया था. प्रकृति का अद्‌भुत नज़ारा वह देख रही थी. ऊपर आकाश नीला-नीला और विमान के बराबर कपसीले बादलों का भरपूर दल, एक के बाद एक विविध आकारों में अचानक आ धमकते और पलभर में गायब. कुछ देर अदिति इसे निहारती रही. फिर यूं ही उसने अलबम का पहला पृष्ठ खोला, कोरल पार्क में ऑक्सीजन पाइप के साथ अदिति का फोटो, पापा ने खींचा था. स्टीमर से समुद्र के विविध रूप, खूबसूरत किनारे, सैलानी. सेल्युलर जेल, इस जेल में काम कर रहे कामगार, उनकी डांट-फटकार. एक फोटो देखकर वह ठिठक गयी.

एक मूर्ति बनाई गयी थी. उस काल की कहानी थी, जब राज कैदी को काम से मना करने पर या सरकार के खिलाफ कुछ कहने-करने पर कैदी को अधनंगा करके उसके शरीर पर कोड़े बरसाये जाते थे. एक लकड़ी की चौखट पर उसे बांधा जाता था. लगभग वह ईसा मसीह की तरह ही पीड़ा को भोगता था. अदिति उस मूर्ति को एकटक देख रही थी. पापा ने उसका ध्यान हटाये बिना यह फोटो खींचा था, जिसमें अदिति गौर से उस मूर्ति को देख रही है.

अदिति सोच रही थी, आज भी कामगारों पर कोड़े बरसाये जाते हैं. केवल कोड़ा दिखाई नहीं देता. शब्द कम नुकीले नहीं होते. उसी मूर्ति के पास काम करने वाली औरत को ठेकेदार डांट-डपटकर काम करवा रहा था. शाम के छह बज रहे थे, पर काम ख़त्म नहीं हुआ था. देश तो आज़ाद हो गया, पर इस औरत को कब आज़ादी मिलेगी. उसके काम को कब सम्मान मिलेगा. कब जायेगी वह अपने घर...अपने बच्चों के पास...कब बनायेगी खाना और कब खिलायेगी...पता नहीं क्या-क्या सोच रही थी

अदिति...अगले फोटो तो वह देख रही थी. पर वह मूर्ति और यह औरत उसकी आंखों से नहीं हट रही थी.

तभी अचानक एक फोटो ने उसके रोंगटे खड़े कर दिये. निकोबार के दक्षिणी द्वीप का यह दृश्य था. उनकी वैन जंगल से निकलकर समुद्र के किनारे पहुंची तो पास के जंगल से पांच-छह काली आकृतियां तरह-तरह की आवाजें करती हुई वैन की ओर लपकीं. अदिति ने वैन के कांच तुरंत ऊपर कर लिये. ड्राइवर ने आश्वस्त किया. ये यहां के आदिवासी हैं. ये कुछ नुकसान नहीं करते. केवल खाने के लिए उन्हें मिल जाये वे लौट जाते हैं. पापा को मालूम था. वे एक थैले में ब्रेड के पैकेट लाये थे. सबको एक-एक दिये. वे सब एक-दूसरे को देखते-हंसते जंगल में ग़ायब हो गये.

ड्राइवर कितने कुतूहल से बता रहा था कि दुनिया भर के टूरिस्ट इन्हें देखने यहां आते हैं. पापा ने पूछा था, "पर इनका कोई काम-धाम, घर-बार नहीं होता..."

"झोपड़ीनुमा कुछ होता है."

"सरकार कुछ नहीं करती इनके लिए ?"

"पता नहीं. पर कुछ तो करती है. पर यहां तक कुछ नहीं पहुंचता. दिल्ली से पोर्टब्लेयर तक पहुंचते-पहुंचते बहुत कुछ गायब हो जाता है. इन लोगों के पास तक कुछ नहीं पहुंचता. इसलिए ये लोग टूरिस्टों के आते ही, उनके पास पहुंच जाते..."

"पर वे बड़े संतुष्ट लगे...कोई छीना-झपटी नहीं. एक पैकेट मिलते ही वापस जंगल में लौट गये."

"बस कहीं बैठ कर खायेंगे और पानी पीकर सो जायेंगे."

"पर कोई नहीं आया तो उस दिन क्या करते हैं ?" अदिति से नहीं रहा गया.

"उस दिन वे फल या कंदमूल की तलाश करते हैं. समुद्र में मछलियां पकड़ते हैं...समुद्र में बहुत कुछ है उनके खाने के लिए..."

"अदिति क्या सोच रही हो बेटे...?" पापा ने उसका ध्यान सागर किनारे लौटाया था. और कहा था मैंने एक फोटो खींचा है इन आदिवासियों का. आओ चलें आगे...

अदिति इसी फोटो पर रुक गयी थी. नाम मात्र कपड़े. आदिम अवस्था, पाषाण युग की. इस जेट की फ्लाइट में बैठी अदिति जेट युग में बैठी हुई पाषाण युग की सच्चाई को अनुभव करती हुई वह बहुत बोझिल अनुभव कर रही थी. लंच का ट्रे लेकर आयी एयर होस्टेस दो बार "एक्सक्यूज मी"...कह चुकी थी. अदिति की एकाग्रता टूटी. "सॉरी" कहकर सीट की टेबल हड़बड़ी में खोल देती है. बहुत अटपटे मन से उसने ट्रे ली. लंच फाइव स्टार का मेनू सामने देखकर फोटो फिर उसकी स्मृतियों में लौट आया. वह सामने देख रही थी. पर उसके सामने दक्षिण निकोबार का दृश्य ही था. पीछे उसे आभास हुआ कि पापा कुछ संकेत कर रहे हैं. पर वाकई पापा थे. दो सीट पीछे बैठे हैं. वह तो भूल गयी थी.

अदिति ने क्या खाया उसे नहीं मालूम. अलबम कब का बंद हो गया था. वह विमान से बाहर देख रही थी. घने बादलों को चीरता विमान कितना बहादुर लग रहा था. बादलों की धज्जियां उड़ रही थीं. धागे-धागे-से महीन होकर हजारों किलोमीटर की गति से बादल भाग रहे थे पीछे...

अचानक अदिति के हाथ में "हिंदू" अख़बार आ गया. वह खो गयी. कई दिनों बाद वह अख़बार पढ़ रही थी. फिर अचानक उसकी निगाह "अंदमान निकोबर एडमिनिस्ट्रेशन" शीर्षक पर जा टिकी. इसमें था -"ग्रेज्युएट्स वान्टेड". हाईस्कूल के लिए टीचर की ज़गह खाली थी.

बस अदिति ने मन बना लिया. पुणे लौटते ही पहला काम करना है. इस पोस्ट के लिए आवेदन रवाना करना है.

उसे ज्यों अपनी मंजिल मिल गयी हो. वह शांत भाव से कब सो गयी पता नहीं.

डी/डी-८, वृंदावन हा. कॉम्प्लेक्स, शांतिबन के पास, कोथरूड, पुणे-४११ ०२९

लघुकथा

जमूरे

✍ हरदर्शन सहगल

एक लड़का खूब पढ़ लिख गया किंतु नौकरी के लिए दर-ब-दर की ठोकरें खाने लगा. अंत में परेशान हो कर एक मदारी के पास जा पहुंचा.

- मुझे अपना जमूरा बना लो.

- मुश्किल काम है भाई. यहां कई तरह के स्वांग रचने पड़ते हैं. तरह तरह की पोशाकें-टोपियां पहननी पड़ती हैं.

लड़के ने मदारी को यकीन दिलाया कि वह यह सब कर दिखायेगा.

मदारी को लड़के पर बहुत तरस आया. मासूम और इतना खूबसूरत गुणी लड़का, सिर्फ जमूरा बन कर रह जायेगा.

- जब तुम यह सब कर सकते हो तो तुम नेता बन जाओ.

- मज़ाक मत बनाओ, भाई साहब !

मदारी ने लड़के के सिर पर हाथ फेरा - मैं तांत्रिक भी हूं. मेरे पास तमाम पार्टियों वाले आते रहते हैं. विश्वास रखो. तुम्हें चुनाव लड़वा दूंगा. जीत कर तुम दलबदलू बन जाना. तुम्हारा लीडर जैसा बोले, कहे, वैसा ही बोलते-करते रहना.

- तो भाई साहब आप ही ऐसा क्यों नहीं कर लेते.

- बूढ़ा हो चला हूं. मेरे संस्कार आड़े आते हैं. मगर तुम्हारी तो सारी उम्र पड़ी है.

५-ई-९, 'संवाद', इंडस्ट्रियल कॉलोनी, बीकानेर ३३४००३

कहानी

वध

रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी. पर कमली की आंखों में नींद का नामोनिशान नहीं था. सर्वत्र नीरव सन्नाटा था. इस सन्नाटे को चीरती हुई एक तेज आवाज कमली को सुनायी देती है. अपने दिल की आवाज...बेतरतीब बढ़ी धड़कनों की आवाज...धक...धक...धक...धक ! जो मानो कनपटी पर धमक सा देती है. मध्य रात्रि में इस शोर से कमली के माथे की नसें जैसे फटने लगती हैं. पसीने-पसीने हो आये चेहरे को बार-बार आंचल से पोंछती कमली, चाहे लखन जतन कर ले, नींद आंखों से वैसे ही उड़ जाती है जैसे हथेली पर रखी कपूर की टिकिया.

केवल रात को ही नहीं दिन के कोलाहल में भी धड़कनें उसका पीछा नहीं छोड़तीं. वो इस आवाज की इतनी आदी हो चुकी है कि भीड़ में भी यह आवाज सारी आवाजों को चीरती हुई, बिल्कुल नगाड़ों की ध्वनि जैसी सुनाई देती है. वो जितना उससे भागना चाहती है, वो उतनी ही तेजी से उसका पीछा करने लगती है.

मोहना, उसका पति...जिसकी मौत हुए अभी महीना ही गुज़रा है. जब भी उसकी बात चलती है कमली भीतर तक थरथरा जाती है. ऐसा लगता है, जैसे एक भूचाल उसके सर्वस्व को निगलने वाला हो. उसके भीतर सब कुछ वैसे ही छिन्न-भिन्न हो जाता है, जैसे भूकंप के झटके से पल भर में गांव का गांव मिट्टी में मिल जाता है.

नहीं...वो मिट्टी में मिलना नहीं चाहती. अभी तो उसे मुनिया के लिए जीना है. अगर...? एक प्रश्न उसके अंतर्मन में हथौड़े की तरह चोट कर जाता है. और वो पुनः थरथरा उठती है. टोले में लगने वाले साप्ताहिक हाट से लौटते वक़्त आज जब बुधिया ने मोहना की असमय हुई मौत पर दुःख जताया, तो कमली के माथे पर फिर से पसीना चुहचुहा आया था. पेट में न जाने कैसी मरोड़ सी उठने लगी थी. दिल की धड़कन फिर बढ़ गयी थी.

कमली के जीवन में मोहना की स्मृति का कोई स्थान नहीं था. दोनों ऐसे जैसे नदिया के दो किनारे...किसी सड़क के दो विपरीत छोर. कहां बात-बात पर गाली-गलौज़ करने वाला मोहना, और कहां सहनशील हंसमुख कमली.

बिटिया का मुंह देखकर वो सारी पीड़ा सह जाती. क्या फायदा व्यर्थ की तकरार से ? परहेज़ ही अच्छा...कीचड़ में पत्थर फेंकने पर छींटे अपने ही दामन में पड़ते हैं...कमली जानती थी. वो यह भी जानती थी कि औरत के सर पर पुरुष का साया न रहे, तो दुनियां उसे ठेंगे पर भी नहीं रखती. अकेली असहाय स्त्री एक ऐसी वस्तु मात्र हो कर रह जाती है...जिसे देख हरेक की लार टपक पड़े.

एक दिहाड़ी मजदूर होते हुए भी कमली के पिता ने उसे पांचवीं कक्षा तक पढ़ाया था. उसे खुशी थी, उसकी बिटिया टोले की एकमात्र साक्षर लड़की थी. चार अक्षर पढ़कर ही तो इंसान दुनियां को जांच-परख सकता है. चार अक्षर पढ़ जायेगी तो फागू की तरह अंगूठा थोड़े ही लगायेगी कमली. कमली का पिता बिटिया का भविष्य बेहतर बनाने की कामना करता रहता था. मोहना की पांच बीघा जमीन, हल-बैल, खपरैल चढ़ा घर देखकर ही तो जीवन भर की सारी जमा पूंजी लगाकर उसने बिटिया ब्याही थी. पर भविष्य के गर्त में क्या है, कोई नहीं जानता. कमली के पिता को जल्द ही महसूस हो गया कि उसने स्वयं अपने पांव पर कुल्हाड़ी मार ली है. पर अब पछताये होत क्या, जब चिड़ियां चुग गयी खेत.

डॉ. निरुपमा राय

कुछ दिन सब कुछ ठीक-ठक रहा. पर धीरे-धीरे मोहना का असली रंग उसी तरह दिखने लगा जैसे कलई किये बर्तन का वास्तविक रंग धीरे-धीरे दिखने लगता है. क्या ऐब नहीं था मोहना में...जमाने की हवा उसे लग चुकी थी. गांजा, शराब, जुआ यही तीन उसके जीवन के मूलमंत्र थे. घर...पत्नी...बेटी...सारे संबंध उसने जैसे ताक पर रख दिये थे. वो जीवन के उस मोड़ पर खड़ा था जहां घर सराय जैसा लगने लगता है...और सारे रिश्ते बांस की भीतरी तह की तरह खोखले.

सारी पीड़ा को आत्मसात कर कमली जी रही थी. वो जानती थी बिना मर्द के स्त्री का जीवन...जैसे बिना पतवार की नाव...बिना जल की मछली. यह सब तो सुनती आयी है वो बचपन से दादी और मां के मुंह से. मन में गहरे तक बैठी भावना को कोई कैसे उखाड़कर फेंक दे ? भावना कोई खर-पतवार नहीं, जिसे जब चाहा उखाड़ फेंका. भावना तो गहरे तक जड़ जमाये वटवृक्ष की तरह होती है, जिसे गिराना सहज नहीं. अपनी बिटिया मुनिया के लिए कमली की आंखों में कई सपने थे. जीवन चक्की के दो पाटों में मुनिया, कमली की तरह नहीं पिसेगी...उसे तो पढ़-लिख कर आगे बढ़ना है. मुनिया गांव के सरकारी स्कूल में पांचवी कक्षा में पढ़ती थी. कमली दिन भर दूसरों के खेत-खलिहाल में काम

करती, चूल्हा-चौका करती, बिटिया को आगे जो पढ़ाना है. अभी से जुगत भिड़ानी होगी. कौन जाने कब बेर-कुबेर कुछ हो जाये...हाथ में कुछ रुपये होंगे तो अच्छा होगा...पति भी तो निरा मिट्टी का माधो मिला है...कभी कभी उसके मन में वेदना पूरे उफान पर होती..

जब कभी मोहना के मन में सोया प्यार जाग उठता, कमली का जी करता, मुंह नोच डाले उसका...जोर से तमाचा जड़ दे उसके गाल पर. पर वो ऐसा नहीं कर पाती थी. क्योंकि उस वक़्त उस पर वही सहज स्वाभाविक भावना हावी हो जाती थी, जो ईश्वर ने सृष्टि रचना के समय नारी और पुरुष को परस्पर आकर्षण में बांधने के लिए पैदा की थी. इस आकर्षण के पाश से कौन बच पाया है, जो कमली बचती ? वो भी इस धारा में बह निकलती. तंद्रा टूटती तो मन धिक्कार उठता. कमली की इस वेदना के मूल में एक कारण था. स्त्री की छठी इंद्रीय पुरुष की आंखों में कौंधते किसी भी भाव को सद्यः ताड़ लेती है. मोहना की आंखों में कौंधते एक घृणित भाव को महसूस कर कमली एकबारगी तो भीतर तक कांप उठी थी. नहीं...नहीं...ऐसा नहीं हो सकता...ज़रूर मेरी नज़रों का धोखा है...पर ? क्या सामने पड़े सांप को रस्सी मान लूं ? यदि मान लूं...तो क्या सर्प दंश का भय मन से मिटा पाऊंगी...? क्या करूं ? वो विकल हो उठी थी. बेटियां तो जंगली बेल की तरह होती हैं. चौदह वर्ष की मुनिया के चेहरे पर यौवन की लुनाई फूटने लगी थी. कमली की अंतर्आत्मा में बैठ भय उसके कानों में सरगोशियां कर उठता. अगर बगिया का माली ही फूल को उखाड़ फेंकने की चाह रखे तो ? वो बेतरह सहम जाती. कुछ दिनों से मोहना की नशे में धुत लाल आंखों में एक वहशियाना चमक कौंधती रहती थी. ये चमक शोला बनकर कमली के मन को दहका देती थी.

कमली का दिन-रात का चैन उड़ गया था. बुरी भावनाएं तब सर चढ़कर बोलती हैं, जब आदमी शराब के नशे में चूर होता है. शराब सारी अच्छाइयों पर पर्दा सा डाल देती है...घोर अंधेरे में डुबा देती है इंसान को. एक ऐसे मोड़ पर खड़ा कर देती है, जहां सारे मूल्य विस्मृत हो जाते हैं...सारे रिश्ते-नाते ताक पर रख, केवल नर और नारी के आदिम भेद का स्मरण रहता है.

एक शाम जब कमली घर लौटी, तो मुनिया ने कहा, "मां, तुम मुझे अकेली छोड़कर मत जाया करो...मुझे अच्छा नहीं लगता."

"पर, तेरे बापू भी तो रहते हैं घर में." कमली ने बिटिया के चेहरे पर नज़र गाड़ते हुए जैसे उसका मन टटोला.

"तभी तो...मैं...तू...समझती क्यों नहीं मां...!" मुनिया सिसक उठी थी. मुनिया के शब्द वज्रपात की भांति कमली के हृदय पर आघात कर गये थे. उफ ! बस...बहुत हो गया. अगर मोहना सारी नैतिकता, सारे मापदंड ताक पर रख सकता है, तो कमली

२५ मार्च १९६४ पूर्णियां (बिहार)
एम. ए. (संस्कृत), पी-एच.डी.,
नेट - विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

लेखन : *देश भर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पचास से ज्यादा कहानियां, आलेख और कई कविताएं प्रकाशित. कहानी संग्रह- "और झरना बह निकला" शीघ्र प्रकाश्य.*

विशेष : *१) 'विष्णु पुराण में भक्ति तत्व' विषय पर शोध प्रबंध.*
२) नारी विमर्श पर 'नारी परिवर्तन के दर्पण में वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक' नामक शोध पुस्तक प्रकाशन हेतु तैयार.
३) आध्यात्मिक पत्रिका - 'वेद अमृत' में पुराणों पर (मासिक श्रृंखला के तहत) लेखन कार्य जारी.

संप्रति : *पार्षद् - जिला परिषद् (कटिहार), सह सदस्या जिला योजना समिति - कटिहार (बिहार).*

ही क्यों ढोये ऐसे रिश्ते को ? माना...मर्द के बिना औरत की कोई हैसियत नहीं...पर क्या उसका कोई अस्तित्व भी नहीं...? अब सहनशक्ति की सीमा चुक गयी है. कमली एक ऐसे दोराहे पर खड़ी थी जहां से एक राह मोहना की मौत की ओर जाती थी. कमली ने दूसरे रास्ते के बारे में भी सोचा था. वो बिटिया को साथ ले, चुपचाप घर छोड़कर कहीं चली जाना चाहती थी. पर कहां जाती ? युवा होती बेटी के साथ किस द्वार पर दस्तक देती ? क्या एक भूखे शेर से बचने के लिए बिटिया के साथ भेड़ियों के झुंड में फंस जाती ? उसने तो पंचायत बिठाने की बाबत भी सोची थी. पर इसमें भी छीछालेदर उसकी बिटिया की ही होती...कुकृत्य मोहना का...और सामाजिक अवहेलना का ग्रास बनती मुनिया. आख़िरकार उसने वही किया, जो वो करना नहीं चाहती थी. पति की विकृत मानसिकता का दबाव मन पर लिये कमली ने एक क्रूर कदम उठा लिया. एक ऐसा पाषाणी निर्णय ले लिया, जिसमें सब कुछ बह गया...और यथार्थ की कठोर, पथरीली धूल-धूसरित धरा पर केवल एक आघातदायी सत्य रह गया...कमली हत्यारिन है. उस रात मोहना ने छक कर शराब

पी थी... कमली जो प्रेम से पिला रही थी... ज़हर मिश्रित शराब...वो सुबह का उजाला फिर नहीं देख पाया. उस क्षण कमली की जो धड़कनें बढ़ीं, आज तक उसका पीछा कर रही हैं.

किसी को मोहना की मृत्यु पर शक नहीं हुआ था. शराबी ऐसे ही तो मरते हैं...अकस्मात. फिर मोहना की मौत पर भला सवाल क्यों उठते ? पर कमली क्या करे ? अकेले में फूट-फूट कर रोती है वो. अंतर्मन बार-बार धिक्कारता है...तू हत्यारिन है. मन का बोझ उसे चैन नहीं लेने दे रहा था. इंसान पूरी दुनियां से नज़रें चुराकर भाग सकता है, पर अंतर्आत्मा से भाग कर कहां जायेगा ? किस ठौर? समाज भले ही मोहना की मौत को स्वाभाविक मानता हो...कमली का अपराधबोध प्रबल होकर अनवरत तेज धड़कनों का सृजन कर जाता है...उस वक़्त कमली को कुछ सुनाई नहीं देता...एक जानलेवा सन्नाटा चारों ओर पसर सा जाता है.

कुछ ही दिनों में, वो मुनिया में आये परिवर्तन को महसूस कर रही थी. वो सहसा बचपन की परिधि लांघ यौवन की दहलीज पर खड़ी हो गयी थी. कभी-कभी कमली को लगता मुनिया मोहना की मौत के बारे में सब कुछ जानती है. पर मुनिया के चेहरे की मासूमियत देख वो इस खयाल को दूर झटक देती थी.

एक दिन बिटिया के मनुहार पर वो 'आंगन बाड़ी केंद्र' में हो रहे नाटक देखने चली आयी. तीन दिनों से केंद्र में नाटक खेले जा रहे थे. कभी साक्षरता की महत्ता पर तो कभी जन जागरूकता से संबंधित विषयों पर केंद्र के बड़े से बरामदे को ही घेरकर स्टेज का रूप दे दिया गया था. केंद्र की संचालिका राधा दीदी सब को निर्देश दे रही थीं.

"आज कौन सा नाटक होगा दीदी ?" मुनिया बहुत उतावली थी. राधा दीदी ने बताया, "दशहरे का समय निकट है न, इसलिए नाटक मंडली वाले आज 'महिषासुर वध' नामक नाटक खेलने जा रहे हैं."

"ओह ! हां, मां कहानी सुनाया करती है दीदी...देवी दुर्गा ने अत्याचारी राक्षस की हत्या की थी न...?"

"नहीं, ऐसा नहीं कहते, देवी ने आततायी महिषासुर की हत्या नहीं, वध किया था. और हत्या और वध में बहुत बड़ा फ़र्क है...और वो फ़र्क है नीयत का...अगर किसी को मारने से सबका कल्याण हो, धरती से पाप उठे, तो मारने वाला पाप का नहीं, पुण्य का भागी होता है. देवी दुर्गा ने जगत के कल्याण के लिए महिषासुर को मारा था, पापी को मारना हत्या नहीं, वध है...पाप का अंत है. समझी ?"

राधा दीदी ने मुस्कुराते हुए मुनिया से कहा, तो कमली जैसे गहरी नींद से जागी. मन में पिछले कई दिनों से उमड़ी जिस बाढ़ से वो त्रस्त थी, पल भर में जैसे उस बाढ़ का पानी उतर गया. मन से एक भारी बोझ सा उतर गया.

गहरे सोच में डूबी मां को झकझोरते हुए सहसा मुनिया ने रहस्यात्मक स्वर में कहा, "तूने...बिल्कुल ठीक किया मां." कमली चौंक पड़ी. मानो विषधर पर पांव पड़ गया हो. थरथराते स्वर में इधर-उधर देखते हुए पूछा, "क्या...? क्या ठीक किया मैंने ?"

"तू ने भी तो एक महिषासुर का वध किया है न मां...?"

"क्या...?" संज्ञाशून्य रह गयी कमली. किंकर्तव्यविमूढ़...जड़ हो गयी पल भर के लिए. ऐसा लगा जैसे प्राण अब शरीर का साथ छोड़ देंगे. मुनिया सब जानती है ? आत्मग्लानि से उसका हृदय फटने लगा.

"तू ने बिल्कुल ठीक किया मां..." मुनिया का फिर से कहा यह वाक्य कमली के घावों पर मरहम रख गया. उसने बिटिया को कलेजे में भींच लिया. आंखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली. ठीक उस पहाड़ी झरने की तरह जिसके मार्ग में रखा शिलाखंड हटा दिया गया हो.

बाहर ढोल और नगाड़ों की ध्वनि बढ़ती जा रही थी...ढम...ढम...ढम...ढम. कमली की धड़कनें सामान्य हो चली थीं.

द्वारा श्री शंभु नाथ झा, उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड,
रंगभूमि हाता, पूर्णियां ८५४३०१ (बिहार)

लघुकथा

मनोवृत्ति

✍ डॉ. गोपाल बाबू शर्मा

वर्मा जी धनीरामजी के घर आकर बैठे ही थे कि देहली गेट पर सांप्रदायिक दंगा होने की ख़बर मिली.

"वर्माजी, आप जल्दी से निकल लीजिए. अगर घिर गये तो आपके घर पर लोग चिंता में पड़ जायेंगे. आप कहें तो किसी को आपके साथ भेज दूं ?" धनीराम बोले.

वर्मा जी खुद बड़े चिंतित थे. ऐसे में किसी को अपने साथ भेजने की बात भला कैसे कहते ? वे अकेले ही चल पड़े.

उनके जाने के बाद धनीराम जी ने चैन की सांस ली, "चलो संकट टला ! अगर देर तक बैठना या रहना होता, तो वर्मा जी अपने पंद्रह हजार रुपयों का तगादा फिर करते."

एक ओर बेचारे वर्मा जी अपनी जान की खैर मनाते, लुकते-छिपते बस-स्टैंड का रास्ता नाप रहे थे और दूसरी ओर लाला धनीराम के मन में विचार आ रहा था - "कितना अच्छा हो कि शहर में ज़ोर का दंगा भड़क उठे और वर्मा जी बस-स्टैंड तक भी न पहुंच पायें."

८२, सर्वोदय नगर, सासनी गेट,
अलीगढ़-२०२००१ (उ. प्र.)

कहानी

बरगद

जिन दिनों अश्शू का मेरी ज़िंदगी में दाखिला हुआ मैं पूरी तरह से शन्नो आपा और मधु के प्यार से महरूम हो चुका था. मेरी ज़िंदगी के तीसरे पड़ाव में अश्शू के आने के पहले अगर आपा का पड़ाव न होता तो शायद अश्शू तक पहुंचने का रास्ता या फिर ज़िंदगी दोनों के बारे में यक़ीन से कुछ कहा नहीं जा सकता था. ज़िंदगी ज़ब समझने लायक या याद रखने लायक हुई उसके पहले से शन्नो आपा मौजूद थीं लेकिन याद नहीं पड़ता कि दूसरी-तीसरी के पहले का क्रम क्या था. हालांकि बाद की तफसीलों से पता चलता है कि उसके पहले की आपा की ज़िंदगी और हसीन रही होगी. पहले पहल का मामला तो स्कूल में आपा के लाये पराठे-अचार और शक्करपारे से होता हुआ उनके घड़ी वाले जूते, बस्ते की महरूमी याद तक है. पांचवी तक मैं और आपा एक ही स्कूल में थे लेकिन उसके बाद भी आपा हाई स्कूल जाने के बाद से वापसी और स्कूल तक छोड़ने का दारोमदार पूरी तवज्जो के साथ करती रहीं. आपा मामू की इकलौती औलाद थीं या कहें कि अकेली वारिस. जबकि हम चार भाई-बहन थे. मुमानी की बेतरह कोशिशें थीं मुझे गोद लेने की लेकिन, अम्मा के भयानक विरोध ने उनकी ऐसी-तैसी कर दी. मामू मुझे अपनी औलाद समझते रहे हालांकि कानूनी या जबरिया तौर पर नहीं. इन सब बातों के बीच मेरे और आपा के लिए जो अच्छी बात हुई वो ये कि हम दोनों को आजादी मिल गयी. चौबीस घंटे के साथ की.

आपा का वजूद मेरे जीवन में वैसा ही था मानो बहुत बड़े पेड़ के साये में कोई छोटा सा पौधा. जो खाद-पानी से लेकर बड़े होने तक के लिए उसी पेड़ का मोहताज हो. आपा मेरे लिए बरगद का पेड़ थीं. उसकी हर शाख, हर पत्ता मुझ पर भारी था. पैसा, सुविधा, प्यार और बचपन, हर लिहाज़ से आपा मेरे लिए पेड़ थीं. उसका प्यार तो मेरा अभिमान और आसमान था. उसके प्यार के तले अगर मेरा सारा जीवन गुज़र जाता तो मैं शायद दुनिया के बारे में सिर्फ़ और सिर्फ़ यही कहता कि दुनिया में सिर्फ प्यार है. बाकी कुछ नहीं. अपने बचपन के लिए मैं सौ जवानियों और ज़िंदगियों को दांव पर लगा सकता हूं. मेरा बचपन यानी कि आपा. आपा यानि कि मेरा बचपन. मेरा टिफिन, मेरा जूता, मेरा बस्ता, मेरा बर्फ का गोला, मेरे सारे खेल, मेरा सारा गर्व, मेरी मासूमियत, मेरी जिद्द, मेरी हर फरमाइश, मेरा शाहाना अंदाज जिसकी फ़कीराना पूर्ति थी बिना आपा के, अपने हिस्से को मेरा बना देने वाली. वो लड़की, औरत या फिर एकमात्र संबोधन 'आपा'.

स्कूल या खेल का मैदान, खाना-पीना या फिर किसी चीज़ की याद और किसी चीज़ का महसूस होना, आपा पर ही निर्भर था. मुझे याद नहीं पड़ता बचपन की कोई शाम उन के बिना पूरी हुई हो. आपा ज़िंदगी की ऐसी इबादत थीं जो सिर्फ और सिर्फ़ मेरे लिए बनायी गयी थीं. स्कूल के जाने के समय, आधी छुट्टी का टिफिन या फिर वापसी का सफ़र. नन्हें हाथों को पकड़े हुए ममतामयी उंगलियों के साथ-साथ रोज की फरमाइश छोटी-छोटी चोरी से लेकर, पॉकेट मनी का पूरा हिस्सा और फिर सारी की सारी चीज़ें 'सत्तू' को सौंप देने, खिला देने और वार देने की अभिलाषा. आपा मानो मेरे रूप को किस्मत और भक्ति की हद तक चमत्कृत करने वाली शख्सियत थीं. 'सत्तू' ने कहा तो पूरा करना है. याद आता है आपा के जूते जिसमें दिशा सूचक लगा था. मेरी जिद्द के चलते उन्होंने मुझे पहना दिये और मेरे जूतों को हाथों में पकड़ नंगे पैर घर पहुंची तो मुमानी ने पहली बार उन्हें झिड़क दिया.

सत्तार मियां साहिल

लेकिन बाद में ये चीज़ें क्रम का रूप अख्तियार कर गयीं. मामी धीरे-धीरे रचती-बसती आपा को ममतामयी आसमानी मूर्ति में तब्दील होते देखती रह गयीं. आपा मेरी सुबह, दोपहर शाम और रात थीं. आपा यानी कि अम्मा, अब्बा, भाईजान और बहना भी. क्या नहीं थीं बता नहीं सकता. आपा थीं तो दुनिया थी. स्कूल था, उसकी पढ़ाई थी. मिस थी और टीचर थे. आपा जिस दिन स्कूल में नहीं, तो स्कूल ही नहीं. आपा की तबीयत ठीक तो मुझे बीमारी नहीं लेकिन मेरी बीमारी तो आपा मरहम. आपा मेरी ज़िंदगी की दाल-भात, अचार और मुरब्बा थीं. हम गरीब घरों में कभी-कभी पकवान की तरह खाये जाने वाले आमलेट को भी आपा मेरे लिए हमेशा उपलब्ध करवा देतीं. बर्फ का गोला ईद की याद दिलाता लेकिन आपा मुझे रोज ईद मनवा दिया करतीं. दूध पाउडर मेरे लिए गूंगे की मिठाई था लेकिन मैं स्वाद बताने की हद तक वाचाल रहता.

कोई भी खेल, पेन्सिल, रबर और फिर नये किस्म के बस्ते, कार्टून और पोस्टर. आपा मेरी मंजिलों को पहली सीढ़ी में ही उपलब्ध करवा देतीं. नज़र उठकर देखते ही दिलवा देतीं. कभी-कभी अश्शू पूछती 'आप मुझे कितना चाहते हैं.' मैं कहता 'बहुत.'

'अच्छा अपनी आपा से भी ज्यादा !' मैं कहता 'हां' क्योंकि आपा मेरा बचपन हैं और तू मेरी जवानी की चाहत. लेकिन यकीनी तौर पर आपा ही अश्शू थी और अश्शू थी ही इसलिए कि आपा थी.

अतीत, वर्तमान और भविष्य... वास्तव में मैं आपा की खोज में मशगूल रहा. वो मधु हो या अश्शू या फिर मेरा 'बच्चा'. आपा की यादों को कई खानों में बांट कर मैं ज़िंदगी भर आपा को ही खोजता रहा. आपा की यादों का ज़खीरा हर क्षेत्र और हर समय साथ रहा. यही कारण है कि अश्शू ने, तो कभी मधु ने, तो कभी मेरे 'बच्चा' ने हर मोड़ पर ख़ास कर पूछने वालों ने हमेशा अलग-अलग रास्तों से आपा रूपी चौक के बारे में ही पूछा. आपा वो चौक थीं जो मेरी ज़िंदगी के हर रास्ते से मिलता था. आपा थीं करके ये रास्ते थे. मधु के रूप में युवावस्था का हो, या जवानी में अश्शू का, या फिर अभी मेरे 'बच्चा' का. लेकिन चौक तो चौक था. मैं घूम-फिर कर यहीं आ जाया करता और आधी ज़िंदगी के बाद भी मुझे लगता था कि अब ज़िंदगी यूं ही इन्हीं रास्तों से भटक कर आपा रूपी चौक की खोज में आना-जाना करेगी या फिर जुदा होकर, मिलकर, तकलीफ़ और खुशी का मिला-जुला एहसास देगी.

आपा जन्नत की वादियों की तरह हसीन-पुरकैफ़ अंदाज़ में मेरे दिलो-दिमाग में पैवस्ता थीं. नहलाने, कपड़ा पहनाने, बालों में कंघी या फिर हल्की चपत के बाद चूम-चूम कर बेहाल करने वाला ममत्व, किसी ग़लत बात के कहने पर पड़ा हुआ तमाचा. आपा सब में शामिल थी. लोरी गा के सुलाने वाली, सिर में थपकी, गोद पे सर रखकर घंटों - मेरा राजदुलारा का राग अलापने वाली, या फिर दौड़-दौड़ कर मुझसे आगे जाकर रहमत चाचा की बर्फ़ एक चम्मच खाकर चिढ़ाने वाली, हुप्पा-हुप्पी बिल्लस में हमेशा दाम देने वाली तो कभी छुप-छुप कर चिढ़ाने वाली. मामू-मुमानी के न रहने पर लड़के की ड्रेस पहन कर नाच-गाकर दिखाने वाली. छोटी सी लकड़ी की तलवार, पीठ में बंधा हुआ, मैं झूठ-मूठ का, और फिर घोड़े की ज़गह टूटी कुर्सी, लड़ती हुई लक्ष्मी बाई. काज़ल की दाढ़ी मूंछ, दुपट्टे का फेंटा बांध कर डाकू मानसिंह या फिर स्नो पाउडर को मेरे चेहरे में पोतकर लिपस्टिक पुते होठें के साथ आइने के सामने मुझ लंगूर को खड़ा करके हंसते-हंसते लुढ़क जाने वाली. कहानी पर कहानी सुनाने वाली, नाराज होने पर आंख दिखाने वाली, मेरे एक बार सिसक कर रो देने पर लगातार कहानी, पापड़, मिठाई, सिर की मालिश, अपने जूते पहनने की छूट, लगातार पीठ पिठैया. गोया हर चीज़ के लिए तैयार रहती थीं आपा. यही तो मेरी जन्नत थी... आपा का साया.

आपा तो हद थी ज़िंदगी और मौत के बीच की. क्या थी, क्या नहीं. क्या बताऊं, क्या न बताऊं, क्या न बता पाऊं. आपा की यादें थीं कुरान की तरह. कभी भी उन्हें पढ़ना एक नमाज

१५ अक्तूबर १९६६, खोदामारा, जि. दुर्ग (छ. ग.).
एम. ए. (हिंदी साहित्य)

लेखन : *पहली कहानी का प्रकाशन आनंद बाजार समूह की पत्रिका 'रविवार' में. प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगभग ३० कहानियां प्रकाशित. आकाशवाणी से अनेक कहानियां प्रसारित.*

विशेष : *म. प्र. साहित्य परिषद द्वारा एक संग्रह के प्रकाशन की स्वीकृति.*

संप्रति : *भिलाई इस्पात संयंत्र में कार्यरत.*

की तरह होता. इतने अरसे बाद भी बचपन का जेहन हो या फिर जवानी का उसी तरह साफ़ शफ़्फ़ाक थीं यादें. चमकते हुए सूरज की तरह, उजले पानी की तरह, चांद की तरह शीतल और खुदा की तरह पाक. बच्चे की हंसी की तरह कोमल और अज़ान की तरह पाक. आपा की यादों में है जीने का हौसला. आपा की यादें थीं तरन्नुम और हिलते होंठ थे मेरे लिए गीत. हाथों की थपकी थी लोरी. बाहें थी जन्नत के दरवाजे जो हमेशा खुले रहते. होठों के शब्द मेरे कानों की सार्थकता के लिए उनके आसपास की खुशबू थी नाक के अस्तित्व के लिए.

मेरे होठें का स्पंदन आपा के लकब के लिए. हाथों को दिया था ऊपर वाले ने आपा को छूने के लिए. पैर थे मेरे दौड़कर आपा की गोद में जाने के लिए. मेरा माथा था उनके चूमने के लिए. उनके बाल थे मुझे दिन में रात के स्याह के साथ नींद के आगोश में ले जाने के लिए. मेरे लब गाते थे उनके गीत और चूमते थे उनके कदमों तले को. आपा की आंखों का रंग था मेरे सपनों का. आपा की बांहों का घेरा मानो खुदाई इल्हाम पवित्रता के लिए. आपा की बातें मेरे लिए रामायण और उनका प्यार मेरे लिए गीता. आपा से बिछड़ना ज़िंदगी का समापन. और मेरा ज़िंदा रहना उनके लिए ज़िंदगी की हरकत. आपा थीं क्योंकि मेरी धड़कन बंद नहीं हुई. मैं इसलिए रहा क्योंकि मैं आपा को ज़िंदगी भर सृजन के रूप में देखता रहा. कभी बने बनाये खांचे में तो कभी मूर्तिकार की तरह. कभी अधूरी प्रतिमा तो कभी तबस्सुम की हल्की

किरण की तरह. लेकिन जीवन चलता रहा क्योंकि मैं आपा की तस्वीर को मुकम्मल करने का सपना संजोये ज़िंदा रहा. आपा की धड़कनों का क्रम और 'सत्तू' की ज़िंदगी की लय कहीं-कहीं किसी-किसी समय समंदर के इस पार और उस पार रहने के बावजूद यकसां थी और बराबर से उतार-चढ़ाव की तरह आती-जाती ज़िंदगी की हरकत का अहसास कराती. बारिश, गर्मी, ठंड आपा की सुबह और मेरी सुबह के बीच एक चीज़ यकसां थी वो भी एक दूसरे की याद में. सुबह का सूरज देखने और फिर अगले दिन के सूरज की तरह दिन और रात की हकीकतों के अक्स अपने में लेकर ज़िंदगी और ज़िंदा रहने की मजबूरी.

मेरी दसवीं का समय और आपा का कॉलेज. एक साल की समझदारी भरी चाहत फिर आपा की शादी. ठहरा हुआ जीवन. दसवीं के समय याद पड़ता है जब रिश्ते और लड़के आना-जाना शुरू करते तो फिल्मी अंदाज में मैं और विकास योजना बना बनाकर किसी गाड़ी को पंचर, किसी की चप्पल तो किसी को ग़लत रास्ता बता बताकर अपनी जद्दोजहद का तालमेल करते. आपा भी निरपेक्ष न रहतीं पर सामने न आतीं. हमीं लोग उनके दिखाने वाले कपड़े में कभी दाग लगा देते तो कभी चाय को गिरा देते तो कभी उसमें आटा मिलाकर बेस्वाद कर देते. हलुये में नमक तो पोहा में शक्कर तो कई बार डाल चुके थे. सारी कोशिशें रहतीं. मासूम शिकायतें भी रहतीं मामू से ताकि अपने ज़िंदा रहने का तर्क और अपनी मखलूक को अपने पास देख सकें. कोई अहसास नहीं, कोई शिकायत नहीं, मार लो, डांट लो, सजा दो लेकिन आपा को हमसे जुदा मत करो. मामू हमारी धड़कनों को सुनें न सुनें. हमारी इच्छा की हल्की धमक के कारण घरजमाई की लगातार कोशिश करते रहे. लेकिन किस्मत का पलटा और भोथरापन इन्हीं दिनों ऊपर वाले की शख्सियत को हम पर नाजिल कर रहा था. आपा की यादों का रूपांतरण कई-कई बार होने लगा. उनकी याद और हकीकत में फासला कम होने लगा. एक आभा-मंडल चारों ओर से व्यूह रचता. किताबों में अक्षरों की ज़गह आपा नज़र आने लगीं, फिर धीरे-धीरे अक्षर गायब हो गये. खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने में आपा के टोकने के बावजूद नफ़ासत गायब होने लगी. हल्की दाढ़ी मूंछ की बेतरतीबी असर करती-करती मार्च-अप्रैल से होते मई में फेल होने के रूप में नमूदार हुई. बस सबको जैसे इसी का इंतजार था. इसके बाद शिकंजे कसे जाने लगे. अम्मा और भाइयों को इसी का इंतजार था. अब्बा निरपेक्ष रहे हमेशा की तरह. हर चीज़ का सूत्रधार और नियामक आपा को मान एक रेखा, निषेध रेखा खींचकर मुझे और आपा को अलग कर दिया गया.

पास होने के बाद विकास दूसरे स्कूल में जा चुका था. मैं तन्हा और आपा का कॉलेज बंद था. हफ्ते में दो-तीन की रफ्तार से लड़के वाले आने लगे. एक प्रोफेसर को जैसे-तैसे पसंद कर

भूखा आदमी

✍ अशोक सिंह

भूखा आदमी
अक्सर रोटी के बारे में सोचता है
और उसे पानी की कोशिश करता है,
जब वह अक्सर रोटी के बारे में सोचता है
तब हर गोल चीज उसे रोटी लगने लगती है
जिसे वह छूना चाहता है,
जब उसकी भूख बढ़ जाती है
तब कहीं आसपास उसके पकने की
सोंधी गंध वह महूसस करने लगता है,
जब और बढ़ जाती है
तब वह अपने और रोटी के बीच
दूरी देखने लगता है,
और दूरी के बारे में सोचते हुए जब
दूरी रास्ते में बदल जाती है
तब वह उसे तय करने के बारे में सोचता है,
और जब वह उसे तय करने के बारे में सोचता है
तब उसमें ज़गह-ज़गह बाधाएं दिखने लगती हैं,
जब बाधाओं से अकेले लड़ने के खतरों को तौलता
वह पहला कदम उठाता है
तब रोटी की तरफ बढ़ते उसके पांव
गढ़ते हैं ज़मीन पर भूख की परिभाषा,
क्षमा करना खाये-पीये समाजशास्त्रियों
मुझे मान्य नहीं है तुम्हारे द्वारा गढ़ी जा रही
भूख की परिभाषा !!

जागृति मंच, दुमका-८१४१०१ (झारखंड)

जून के आखिर में शादी तय हुई. कलेजे को उछलते देख आपा का धार-धार रोना, और हलक तक आयी मेरी जान को उसकी ज़गह में पहुंचाना बड़े जिगर का काम था. दिन भर में दोनों दो से चार बार इसका अभ्यास करने लगे. आपा और मैं शादी की तैयारी में बेहद मशगूल थे. जाने वाली लड़की की अंतिम इच्छा या खानदान की ओढ़ी मर्यादा जो भी हो. मुझे और आपा को पूरे चौबीस घंटे की छूट थी. हां, अम्मा और मुमानी दोनों की तरफ़ से भी. अपनी साइकिल पर आपा को बैठाकर मैं कभी सिविक सेंटर, कभी पोस्ट ऑफिस के पीछे वाले मैदान में तो कभी हम लोगों के पसंदीदा टपरे वाले बर्फ के ठेले में. क्यों ? बस यूं ही. सभी बातें कर ली जायें. दस जन्म की. खाना-पीना, सोना, उठना,

बैठना एक तरफ़. सुबह को गये शाम को आते. शाम को आकर मैं फिर वास्तव में सारे काम को अंजाम देता. दिन भर मैं आपा को लेकर घूमता बिला वज़ह. बिना काम. शाम को आकर उनको घर छोड़ते ही विकास के साथ निकलता तो वो मुझे बैठकर सारे काम अंजाम देता.

१३ जून आते आते जान भर बची थी. बाकी सब निचुड़ा हुआ था. आपा का 'सत्तू' काला कलूटा एक ढांचे के माफिक इधर उधर प्रेत सरीखा डोलता. शादी की खुशी में रौनक अफ़रोज होने वाली लड़कियों के बजाय आपा कहीं-कहीं उजली तो कहीं पीली नज़र आतीं. ओढ़ने बिछाने का तो छोड़ो. कपड़े और सूट की डिजाइनिंग इतनी बेतरतीब थी पूछो मत. त्वचा रूखी, बाल दोमुंहे और चाल मरियल. गाल में गड्ढे, ओंठ पपड़ाये. मेकअप के बाद भी चेहरा एकदम सूखा. कानों में कम सुनने की बीमारी. नयी प्रकार की रतौंधी के जैसे दिन में भी कम दिखता. शादी वाली लड़की का 'हलिया' - 'बन्नो सजी रे, बन्नो सजी रे, अपने दूल्हे के लिए'. हल्दी के साथ मेहंदी और चंदन भी असर नहीं छोड़ पाये. पीले सलवार कुर्ते में सूरज की रौशनी को मात करने वाली, गेंदे के फूल से जन्नत को महकारने वाली और सूरजमुखी को अपने घरेलू कपड़े में फेल क़रने वाली मेरी आपा पीलिया के मरीज़ की तरह जहां-तहां बैठती पीलापन छोड़ देती थीं. मेहंदी बारात से खाना-पीना बंद. लेकिन 'सत्तू' को खिलाना बंद नहीं. विकास 'सत्तू' को लेकर आ. विकास 'सत्तू' का मुंह खोल. विकास आज 'सत्तू' को एक गिलास चाय पिलाना है. 'सत्तू' को खिलाने के लिए ज्यादा दम-खम की दरकार नहीं. क्योंकि दम रहे तब न. 'आपा'-'आपा.' मुंह अपने आप खुल जाता. उस चक्की में विकास कुछ भी डाल देता. कभी आधा अंदर जाता, कभी बाहर. आपा की थाली रोज लगाई जाती और रोज वापस. पूरी जिद्द को माना जा रहा है आपा की. आखिर इज्जत का सवाल है.

'सत्तू' पूरे समय साथ रहेगा. विवाह के समय भी साथ, रहेगा. बिदाई की रस्में के बाद आपा के साथ खैरागढ़ जायेगा. तीन दिन बाद रस्म के तहत आपा को लेकर आयेगा. चांद छुपने तक आपा के साथ रहेगा. इतनी शर्तें मंजूर तो आपा शादी को तैयार, मरने को भी तैयार. हां बेटी, 'सत्तू' तेरी नज़रों से ओझल नहीं होगा. तू जो कहेगी, माना जायेगा बस निकाह में गड़बड़ मत करना. 'सत्तू' बेटा खानदान की इज्जत का दारोमदार तेरे ऊपर है. तू ही मां है, बाप है, भाई है, बहन है शन्नो का. मामू खड़े हैं अब्बा के साथ. अम्मा खड़ी हैं मुमानी के साथ. निकाह के पहले आपा बेहोश, कमजोरी के कारण. डॉक्टर समझा रहा है. ग्लूकोज़ पिला-पिलाकर अल्लाह-अल्लाह करके निकाह का फरीजां अंजाम दिया जा रहा है. क्योंकि 'सत्तू' आपा की ज़गह ले चुका है और आपा 'सत्तू' की ज़गह. 'सत्तू' की डरावनी छाया के नीचे आपा पसरी हुई हैं. घड़ी-घड़ी होश में लाकर उनके तलुये और हथेली की मालिश की जा रही है. डॉक्टर जान डालने की भरपूर कोशिश कर रहा है. गवाह वकील के साथ पेश-इमाम साहब तशरीफ़ ला रहे हैं और 'सत्तू' आपा को कारगर तरीके से जादुई विद्या के तहत होश में लाने के लिए पानी के लगातार छींटे मार रहा है. उसकी आपा लाल जोड़े में दुल्हन कम रोड में लटकते खतरे का निशान ज्यादा लग रही हैं. होश में आते ही 'सत्तू' की ओर एकटक देखते हुए भी उनकी आंखों में एक बूंद आंसू है न हैरानी. 'कुबूल है', 'कुबूल है', 'कुबूल है'. दुआ के लिए हाथ उठ गये. मुमानी और अम्मा गले मिलकर मुबारकबाद दे रही हैं और अचानक आपा का ठंडा जिस्म पसर गया. 'सत्तू' को लगा अब 'इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजेउन' पढ़ देना चाहिए कि आंखें खुल गयीं. आपा के जिस्म ने हरकत की. 'सत्तू' उसे उठने का इशारा कर स्वयं कोशिश करने लगा और पंद्रह रातों को दिन बनाकर सम्हाला 'सत्तू' खुद ही मोहताज होकर पसर गया. महफिल के समझने के पहले विधाता की चेतना ने गुल खिलाया. पेश-इमाम की आवाज मर्दाना महफिल से गूंज उठी. - 'अम्मीन-आमीन सुम्मा आमीन'.

सेहरा पढ़ने के बाद की रस्मों को 'सत्तू' और आपा की निगाहों ने नहीं देखा. रात में ग्यारह बजे के करीब कोई हल्का-हल्का स्वर सुनाई देने लगा. ख्वाब है या हकीकत, काफी देर बाद 'सत्तू' को महसूस हुआ. बिदाई का शरबत तैयार है, उसका इंतज़ार है और ओंठ से लगाकर गेट के बाहर जब उसने आपा को गाड़ी में बिठाया तो जोरदार लगे ठसके ने घूंघट के बाहर शरबत के छींटे और बाहर निकलती जान को हमेशा के लिए उसके चेहरे, कमीज़ और हथेलियों पर पैबस्त कर दिया.

एक ओर आपा का दूल्हा, दूसरी ओर 'सत्तू'. मरी है कि ज़िंदा, खैरागढ़ जाकर पता चलेगा. रास्ते भर कोई हरकत नहीं. चिपकी हुई एक ठंडी सी जान, अकड़ी देह के साथ. बड़े से घर के सामने उतारते समय लाश के हाथ-पैर मुड़े हुए थे और साथ ही साथ ज्यों का त्यों उतारने की मजबूरी और मांग भी. दरवाजे के पहले मेहंदी के छापे, चावल का नाप और तमाम रस्में दूल्हे ने 'सत्तू' के साथ ही निपटाये और उसके बाद विकास को लेकर वो घर के पिछवाड़े में बैठा शिरीष के पेड़ को देखता रहा. विकास रात भर में बीसों बार रोने और रुलाने को सुबह में तब्दील कर चुका था. दूल्हे मियां खोजते हुए पहुंचे थे और अत्यंत विनयशील होकर हाथ पकड़े दोनों को ले जाकर आपा के बाजू में अपने पलंग में बैठाकर बाहर निकल गये थे. आपा के चेहरे में वही भाव था जो 'सत्तू' को बचपन से दिखता था, बस थोड़ा सा फ़र्क आया था मुंह में. कहते हैं इंसान की जान जहां से निकलती है वो थोड़ा-सा तिरछा हो जाता है. चाय आयी, नाश्ता और खाना भी. सुबह दोपहर को कहकर शाम के साथ रात के पास चली गयी. शिरीष का पेड़, विकास और 'सत्तू', साथ में थी रात. दो दिन-रात क्रम में थोड़ा सा भी परिवर्तन नहीं आया. मामू-मुमानी, अम्मा-अब्बा,

'सत्तू', विकास आपा को तीसरे दिन अपनी जन्नत में लेकर आ गये. नयी-नयी दुल्हनिया आपा, हसन-हुसैन की सोगवारी, मातम और मुहर्रम, कई लाख गुणा होकर 'सत्तू' के मरसिये में बदल गयी.

"जैनब के दुलारे करबल में,
आपा के दुलारे जन्नत में,
क्या जुल्म अनोखे सहते हैं,
जहन्नुम की तरह क्यों रहते हैं."

ऐ, ऐ क्या कर रहा है. टीप ग़लत है. पहले ही दिन का मरसिया ग़लत. माइक छीनो, 'सत्तू' का दिमाग फिर गया है. सोगवारी को मज़ाक बनाकर रख दिया है. 'सत्तू' का मुहर्रम आपा के कारण नये अर्थ में नमूदार हुआ है. ज़िंदगी धीमे-धीमे हुसैन की याद को मुहर्रम में तीक्ष्ण और साल भर महदम-महदम करके इनकी ज़िंदगी में पैवस्त कर रही है.

"जैनब की नज़र है चौखट पर,
और कान लगे हैं हर आहट पर
जब कोई दुलारा बाहर हो,
हर मां को खटका रहता है,
हैदर का घराना करबल में,
क्या जुल्म अनोखे सहता है."

आपा की नज़रें खोज रही हैं अपने दुलारे को. और खिला रही हैं खिचड़ा, दही, गुड़. ज़िंदगी ने दी दस्तक मुहर्रम के महीने में.

"यारो, ये शहीदों का गम है,
जितना भी लिखूं, उतना कम है.
हर साल मुहर्रम में घर-घर
शब्बीर का मातम रहता है.
ज़िंदगी भर हर मां को,
अपने ही दुलारे का गम है."

आपा है और उसका गम है. 'सत्तू' है और ज़िंदगी की धड़कन है. भाई, मुहर्रम की दस तारीख है आज. पहला महीना भी चला. ज़िंदगी का पहला महीना मौत को ऐसे ही समेटे-समेटे आता है. दो दिन और फिर आपा की बिदाई.

खिचड़े ने ताकत दी है. कच्चे दूध, दही और गुड़ का शरबत. छबील बताशे. सबसे बढ़कर हसन-हुसैन की याद और मातम. अपन ज़िंदा रहेंगे रे. यकीनन अपन दोनों ज़िंदा रह सकते हैं. आपा ज़िंदा है, 'सत्तू' ज़िंदा है और ज़िंदा है हजरत इमाम हसन और हुसैन अलैहस्सलाम का गम और तासीर.

सुबह दस बजे निकलना है और एक ही बस है राजनांदगांव होकर जायेगी. आपा की बस. खूब तेज. 'सत्तू' की जद से बाहर. परिवहन की बस सीट नं. १३ और विकास की साईकिल के पीछे बैठा 'सत्तू'. सुबह दस बजे रोज जाना है, आपा की बस है ये. सीट नं १३.

विकास कन्डक्टर को समझाता है. अरे भई, चलने के पहले उतर जायेगा. पंडित जी भी कभी-कभी झल्ला जाते हैं. साला, साल भर में एक दिन भी आड़ नहीं गया. आयेगा, सीट पे बैठेगा, छुयेगा और उतर जायेगा. पांच मिनट के अंदर कितना सवारी का लॉस होता है. उधर खैरागढ़ है. पीछे में कुआं. उसके बाजू में शिरीष का पेड़. 'सत्तू' बैठ चबूतरे पर और साथ में विकास. बर्तन धोना, कपड़ा धोना, नहाना, बैठना, आपा का सब कुछ यही चबूतरा है. शिरीष का पेड़ ... खूब बड़ा होना रे, मेरे 'सत्तू' के जितना. खूब उम्र है तेरी, मेरे 'सत्तू' के जितनी. कितना बड़ा चबूतरा है पेड़ का. आपा लीपती हैं, हां रोज लीपती हैं. - अरे यार, पागल है तेरी आपा. साला पूरे घर आंगन में फर्श लगवाया तो वहां भी लगाने को बोल दिया. बस, बातचीत खाना-पीना बंद. ठीक है, लीपो साले को, ज़िंदगी भर गोबर-माटी से, मेरे को क्या करना. दूल्हे भाई खीझते हैं लेकिन दोनों की धड़कन को स्वीकार कर चुके हैं. 'सुबह होती है, शाम होती है. उम्र यूं ही तमाम होती है'. कितना पानी कुयें का कम हुआ. कब से नल लग गया. पहले दानिश फिर फज़ल लेकिन आपा का शिरीष है, वही चबूतरा है, कुआं है. 'सत्तू' के दिन रात अभी भी स्कूल में रंगे हैं. परिवहन की बस में अभी भी उसकी धड़कन बसी है.

१३ जून, सीट नं. १३. यकबयक नब्ज जम जाती है. धड़कन डूब जाती है १३ नंबर से लेकिन रुकती नहीं. पूरी की पूरी क्योंकि सुबह होते ही आपा का दूध पाउडर, अंडे का आमलेट, 'बच्चा' की मुस्कराहट अश्शू का प्यार, अम्मा की मनौतियां अब्बा का अभिमान, छोटू की बदमाशी और सबसे बढ़कर उसकी आपा कई-कई रूप में नमूदार है. कई-कई रूप में निखरती ज़िंदगी की हर आराईश में शामिल होती, रोज-ब-रोज यादों की फसल को बढ़ाती और सीधे गाड़ी से एक घंटे में दोनों को मिला भी देती. मोटर साइकिल को पंख लग जाते हैं. दुर्ग जालबांधा-खैरागढ़. दुर्ग-राजनांदगांव-खैरागढ़. गांव, बाजार और फिर पक्का मकान रज्जब अली खान का. दूल्हे मियां और बच्चों के पीछे दौड़ती आपा. मोटर साइकिल का स्टैंड लगने के पहले दौड़ती, छलछलाती आंखों वाली औरत जिसका कोई रूप नहीं, कोई वेशभूषा नहीं, कोई आकार-प्रकार, शख्सियत नहीं. बस एक मुकम्मल संबोधन 'आपा'. गली में ही लाख मना करने के बाद भी 'सत्तू' की दुनिया शुरू. वही बैचनी, आते ही जाने के समय की धड़धड़ाहट और फिर एक अजीब सा सुकून जो धीमे ज़हर की तरह घंटे भर में उसे बेबस कर देता. मुरझाया हुआ चेहरा, जर्द-जर्द आंखें, फिर सलाम, आपा की आवाज़ और, फिर पूरे रास्ते की मुर्दनी छायी एक सवारी जो मोटर साइकिल में किसी चमत्कार की तरह वापस घर पहुंचती. अगले बार की ज़िंदगी खैरागढ़ से लाने के लिए.

एल. आई. जी.-१७७,
हुडको, भिलाईनगर-४९० ००९.

'जब अरुषि कहेगी...!'

इसके बाद रीतेश को कोई डर नहीं था. चाहे जब उसके सामने आयशा से बात करते. कभी-कभी वो चाहती कि उनका वक़्त उसे भी मिले, जब वो सिर्फ़ उसके हों. उसे कभी घुमाने नहीं ले जाते, जब कभी जाते भी तो ड्राइवर रहता. कहते, किटी ज्वाइन कर लो. पैसों की कमी नहीं है. चुपचाप वह सब सह रही थी. एक दिन अचानक उसे चक्कर आया, वह नीचे सोफ़े पर ही बैठ गयी थी. मम्मी जी डॉक्टर के पास ले गयी थीं, डॉक्टर ने टेस्ट के लिए कहा... पता चला वह प्रेगनेंट है. मम्मी जी बहुत खुश हुई थीं. उससे कह दिया था, खूब खाओ, आराम करो, और खुश रहो. रात को जब रीतेश आये, वह बहुत खुश थी.

- रीतेश...आपको याद है, उस दिन मैंने कहा था, मैं भी मां बनना चाहती हूं...

- तो...पर प्रिया, फिलहाल ऐसा कुछ मत सोचो...

- पर रीतेश...ऐसा हो चुका है.

- क्या...पर मैं बिल्कुल नहीं चाहता...ये बंधन.

वह अवाक रह गयी थी. वह भूल चुकी थी, कि इतनी पढ़ी लिखी है. साधारण सी घरेलू ज़िंदगी से चिढ़ती थी. अब वो सोचती है, तो समझ पाती है, जीजी क्यों चुपचाप सब सहती थीं.

पर अब हालात बिगड़ते ही जा रहे थे. ऐसी हालत में भी उसे मानसिक सुकून जरा भी नहीं था. रीतेश की एक ही रट थी कि वह नहीं चाहता कि प्रिया का बच्चा हो. पर मम्मी जी चाहती थीं. उस दिन बात बहुत बढ़ गयी थी.

- ममा अगर आपकी यही ज़िद होगी...तो मैं कुछ कर लूंगा...आपने कहा मैंने शादी कर ली. निभा भी रहा हूं. ये रोज़ आयशा को लेकर मुझे परेशान करती है. ममा आयशा को आप अपनी बहू न मानें न सही, पर एक बात समझ लीजिए, हम दोनों की बेटी को आपको अपनाना होगा. अगर इस घर में कोई बच्चा आयेगा. तो वो हम दोनों की बेटी 'ग़ज़ल'.

छन-छन-छनाक जैसे शीशे टूटते चले गये. लगा ब्रेन हैमरेज हो जायेगा.. बेटी ! रीतेश की बेटी भी है. इतना बड़ा धोखा...इतना बड़ा. - प्रिया, तुम्हारी बुआ को मालूम है, ये सब...

- क्या...?

- हां, और तुम खुद सोचो वरना, क्या है तुम्हारे घर में जो तुम्हें ब्याहकर लाते. हैसियत है क्या उनकी ? शादी के बाद भी बेटी के घर का लेने की नीयत रहती है. आज तक तुम्हें दिया क्या ? वो तो हम उसमें और गहना, कपड़ा मिलाकर सबको दिखाते थे. आज तो तुमने हमारे सामने ऊंची आवाज में बात की है. आगे से ध्यान रखना.

अलका अग्रवाल सिगतिया

बस फिर हालात और बिगड़ते गये थे. रीतेश ने कह दिया था, - ममा मैं अब इसके साथ नहीं रह सकता.

- तो ठीक है अगर इसके बेटा होगा, तो हम उसे रख लेंगे.

- ममा... नहीं अब उसकी भी कोई ज़रूरत नहीं. आगे क्या होगा देखेंगे.

इस घर में प्यार, मान-सम्मान कुछ भी अब नहीं बचा था. आखिर मुझे वापस कानपुर भेज दिया गया था. छह महीने पहले जब मैं आयी थी, तब सब सर आंखों पर रखते थे. पर इस बार सबके उलाहने, उपेक्षा, यही सब उसे मिल रहा था.

मां ने छूटते ही कहा था - प्रिया...यह तुमने क्या किया, एक बार भी नहीं सोचा, कि अब तुम मां बनने वाली हो !

- पर मां...आयशा...रीतेश, उसे कभी नहीं छोड़ सकते.

- तो क्या हुआ, धीरज से काम लेना रहा, सब ठीक हो जाता. जब बच्चा आता...

- मां...रीतेश तो बच्चे को रखना ही नहीं चाहते थे. जब से पता चला... यही कहते रहे एबॉर्शन...

भैया...आये थे - इसकी सास ने बहुत नाराज़ी से फोन किया था. वहां भी ये महारानी उनसे जबान लड़ाती थी. पापा गये थे मेरी ससुराल. पर रीतेश ने कह दिया था - बस अब तो तलाक ही होगा.

और फिर यह तय हो गया था, अब प्रिया को रहना यहीं है. इन्हीं तल्खियों के बीच. आख़िर, उसका नन्हा असीम आया था...और लगा था कोई तो उसका है. वह भूल जाती, जब वो उसे अपनी छाती से लगाती कि दुनिया कितनी बेगानी है. पर कई बार ऐसा होता, असीम रो रहा होता, उसे घर का काम ख़त्म करना होता. उसने बहुत चाहा कि वो ट्यूशन पढ़ाये या कॉलेज ज्वाइन कर ले. पर पापा ने साफ़ कह दिया...हरगिज़ नहीं !...उसे असीम के लिए छोटी-छोटी सी चीज़ के लिए मन मारना पड़ता.

एक बार असीम ने निधि का खिलौना छू लिया था - वो ज़रा रोयी तो भाई ने आठ महीने के बच्चे को चटाक से मार दिया.

नहीं...अब कुछ तो करना होगा. उस दिन उसकी बचपन

की सहेली सरिता आयी. उसके गले मिलकर वह बहुत रोयी थी. सरिता ने कहा - प्रिया चल एक बार कुछ दिन मेरी ससुराल चल, मन बदल जायेगा. मां ने मना किया. पर इस बार वह नहीं मानी थी.

असीम को लेकर सरिता के साथ, फर्रुखाबाद गयी थी. तीन-चार दिन तो सब ठीक रहा...पर उस दिन जब सरिता की सास ने पूछा, - क्यों बिटिया...तुम्हारे पति क्या करते हैं ?

- जी बिजनेस है.

- कहां है...मन लग जाता है, तुम्हारे और मुन्ना के बिना. वह बोल उठी थी - अम्मी जी...मेरा तलाक....!

- क्या...भई हमने तो जेई सीखा, निबाह तो पति के घर में ही होता है, कैसे पालोगी, बच्चे को...? यह कहकर वे शायद पड़ोस में चली गयी थीं. उनके चेहरे पर अजीब से भाव थे.

प्रिया ऊपर चली गयी थी. सरिता कमरा ठीक कर रही थी. तभी उसके पति भी आ गये. सरिता ने कहा प्रिया ऐसा करो तुम दोनों बातें करो मैं चाय और पकौड़े बना लाती हूं.

- चल मैं भी नीचे चलती हूं.

- पागल...मेहमान है तू...मैं बस अभी आती हूं. ज़रा देर में उसके पति बोले...एक मिनट मैं पानी लेकर आता हूं.

- आप बैठिए मैं लाती हूं....

नीचे उतरी, तो अम्मी जी की आवाज कानों में पड़ी थी. ...क्यों बहू, कैसी बेशरम सहेली है तुम्हारी ? तुम भी ऊपर दीपक के संग उसको अकेला छोड़ आयी... तलाक दिया है आदमी ने...कब तक रहेगी, वो यहां ? भेज दो उसको वापस...

- पर मैं कैसे बोलूं....

- जो तुम न बोल सको, तो हम बोल देवेंगे.

मैं बगैर पानी लिये छत पर चली गयी थी. नीचे एक मजदूर परिवार था, मैंने पहले भी कई बार गौर किया था, वो औरत जब भी घर पर होती, काम में लगी रहती. आदमी, या तो खाट पे पड़ा रहता, या बच्चों पर चिल्लाता रहता. आज वो उस औरत को पीट रहा था. मार खाती वो चिल्ला रही थी.

- खूब खाय लिये हमरी कमाई. अब नाय रइहैं, तुम्हरे संग. साले सड़ियो (सड़ोगे), भूखन मरियो, तब पता चलिये. अब जो हाथ न रोकियो, तो हमहु का हाथ उठिए !

इससे ज्यादा देखने की हिम्मत नहीं थी. मैं छत के दूसरे छोर पर चली गयी. आवाजें आ रही थीं, सरिता ऊपर आयी - प्रिया तू यहां है...मैं नीचे ढूंढ़ रही थी. ये बोले वो पानी लेने गयी थी. चल चाय, पकौड़े ठंडे हो रहे हैं.

- सरिता मैं कल जाऊंगी.

- पर...प्रिया...

- बस अब कुछ मत कह...पर हां सरिता, अब मेरी कशमकश ख़त्म हो गयी है. वो पड़ोस की औरत अक्सर मैं जिसके बारे में तुझसे बात करती थी, उसने मुझे राह दिखा दी है.

कानपुर पहुंचकर सीधे असीम को लेकर, सामान के साथ ही मैं अपने कॉलेज पहुंची थी. सामान चौकीदार को सम्हलाकर असीम के साथ मैं प्रिंसिपल सर के ऑफिस पहुंची.

- प्रिया तुम...!

उन्होंने असीम को प्यार से गोद में लिया. माथा चूमा.

- अपनी मम्मी की तरह इंटेलिजेंट बनना.

उन्होंने सौ का नोट, असीम की मुट्ठी में दबाया था.

- बोलो आज कैसे...?

- सर मैं नौकरी करना चाहती हूं.

- पर बी. एड. के बिना परमानेंट...

- सर ! मैं साथ-साथ कर लूंगी.

- पर तुम्हारे घर वाले तैयार हैं ?

- यह निर्णय मेरा है, मेरी विवशता है. ...आपने तो सब देखा है, अपने बच्चे को मैं उस माहौल में नहीं रखना चाहती. आप अगर मुझे ट्यूशन भी दिला देंगे. अलग घर भी...

- प्रिया ऐसा करो...मेरी बेटी के पास एक छोटा सा घर है, वो किराये पर देना चाहती है. एक बार तुम रहना शुरू कर दो, जब पैसे मिलने लगें, तब किराया दे देना.

मैंने उनके पैर छू लिये थे. आंखों में आंसू आ गये थे. मैं घर पहुंची. हाथ धोकर रसोई में असीम के लिए दूध बनाने लगी. मां, घर पर थी नहीं. भाभी अंदर आयीं. - प्रिया जीजी आपके आने का मालूम तो था नहीं. दूध ज्यादा नहीं लिया हैगा. मिति और निधि को भी दूध देना है. पानी मिला लो.

- भाभी मिति और निधि बड़ी हैं कुछ खा भी सकती हैं.

- अच्छा हमारा ही आदमी कमाये और हमारे बच्चे भूखे रहें. हाय...हाय...

मां आ गयी थीं, - प्रिया कब आयीं तुम...और आते ही, क्या झगड़ा चालू कर लिया.

- मां मैंने कोई झगड़ा नहीं किया...आशू भूखा है उसके लिए दूध बनाने आयी. भाभी ने झगड़ा शुरू कर दिया.

- प्रिया तुमसे कहा न, यहां रहना है तो भाभी से दबके रहना पड़ेगा.

- तो ठीक है मां...नहीं रहना मुझे यहां.

- क्या...तो कहां रहोगी, क्या खाओगी, और क्या खिलाओगी अपने लड़के को.

- मां मैं क्या खाऊंगी...वो देखा जायेगा, पर हां अपने बच्चे को पानी मिला दूध नहीं पिलाना पड़ेगा. ज्यादा न सही...उसके लिए दो चार खिलौने भी खरीद पाऊंगी.

- दिमाग ख़राब हो गया है... पापा और जय कभी न मानेंगे.

इतने में पापा आ गये थे, - ये क्या हल्ला मचा रखा है. दरवाज़े तक आवाजें आ रही है. प्रिया...आते ही...

- पापा मैं झगड़े करती हूं न ठीक है...मैं यहां रहूंगी ही नहीं...तो झगड़े ही नहीं होंगे.

भैया आ गया था, बीच में बोला - बड़ी-बड़ी बातें कर रही हो. हर काम के लिए पैसा चाहिए. कहां से लाओगी ?

- मैं कॉलेज में पढ़ाना शुरू कर रही हूं. घर भी मिल गया है.

- ओह तो उस बुड्ढे श्रीवास्तव ने तुम्हारा दिमाग ख़राब कर दिया है. तुम नौकरी करोगी, अलग रहोगी, तो सब क्या कहेंगे, कि एक बहन का खर्च भी न उठा पाये. थू-थू कराओगी.

- अच्छा...जैसे मेरा खर्चा खुशी से उठा रहे हैं आप, क्यों भैया ? अजीब से दुःख और व्यंग्य के साथ प्रिया ने कहा था. हिचकियों में आगे के शब्द दब गये थे, - मेरे बच्चे को दूध के लिए भी.... -

वह ज्यादा नहीं बोल पायी थी. कमरे में पहुंचकर रोते हुए, उसने भूख से बिलखते आशू को छाती से लगाया था, जितना भी हो सके, कुछ तो भूख मिटेगी उसकी. मां कमरे में आयीं, उसके सिर पर हाथ रखा, ऐसा लगा शायद उनकी आंखों में आंसू हैं. बाहर का शोर भी थम गया था.

फिर प्रिया, अपने सामान के साथ, अपने घर में शिफ्ट हो गयी थी. मां ने चुपचाप दो हजार रुपये थमा दिये थे. बिना कुछ कहे उसने रख लिये.

- मां अगर तकलीफ़ न हो तो एक बार चलकर मेरे साथ रह लो. मां ने पिताजी से पूछा, उन्होंने न नहीं कहा. मां और मैंने आकर घर जमाया था. तलाक अभी तक हुआ नहीं था. आज यहां इस घर में आकर अकेलापन लगा था. इस मासूम आशू का भाग्य भी देखो, पर क्यों मैं उस आदमी के लिए रोऊं, जो कभी मेरा था ही नहीं. मैं ही आशू की मां और पिता दोनों हूं. मां, पांच-छः दिन ही रही होंगी कि पड़ोस की किराने की दुकान में भैया का फोन आया था.

- मां अब क्या बेटी ही तुम्हारे लिए सब कुछ हो गयी ? यहां, तुम्हारी बहू को अकेले कितनी तकलीफ़ हो रही है. घर सम्हाले कि बच्चों को !

फिर मां...नम आंखों से वापस चली गयी थीं. प्रिया ने ट्यूशन भी शुरू कर दिये थे, पेंटिंग क्लास भी ले लेती थी. शनिवार, रविवार को, कॉलेज जाते समय पालनाघर में आशू को छोड़ती, आते वक़्त ले आती. कॉलेज में ही मेरे साथ ही शैफाली ने भी ज्वॉइन किया था. हम दोनों की अच्छी दोस्ती हो गयी थी. कभी-कभी सर की बेटी भी आ जाती. यहां मेरा सारा दिन व्यस्त रहता. थकान भी होती, पर आशू को छाती से लगाते ही मैं सब भूल जाती. और लगता, सच कितना स्वर्गिक है मां बनने का सुख. उस दिन जब कॉलेज से घर पहुंची तो मां घर आयी हुई थीं.

- मां आप...कितने दिनों बाद आयी हैं. आशू दे ऽ ऽ खो नानी आयी हैं.

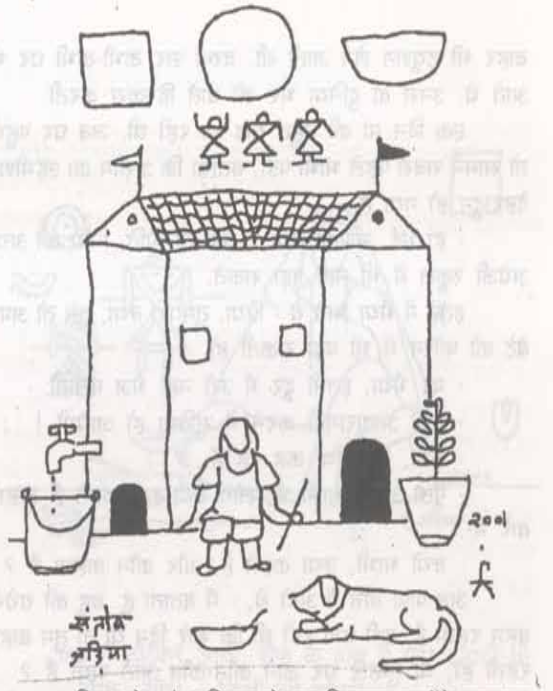

- प्रिया लो.. ! आहिस्ता से एक लिफाफा उन्होंने पकड़ाया. मैंने खोला...तलाक की कार्यवाही पूरी हो गयी थी. यह जानती थी, रीतेश मुझे तलाक दे रहे हैं, फिर भी कागज़ात मिलने पर अंदर से बहुत ज्यादा दुःख हुआ. अंदरवाले कमरे में जाकर मैं रोने लगी थी. मुझे पता भी नहीं कब तक अंदर का दुःख आंसुओं में बहता रहा. मां रोते हुए आशू को लेकर अंदर आयी थीं. प्रिया यह रो रहा है, दूध भी नहीं पी रहा. हमें भी जाना है. बहू को आज बहन के घर जाना है !

मेरे सिर पर हाथ रखकर वे निकल गयी थीं. रोते हुए आशू को मैंने खुद से चिपका लिया था. इसके पापा नहीं...बिना बाप का...पर क्या हो जाता, ऐसा बाप होता, तो भी...?

फिर उन दिनों अक्सर ऐसा होता, जब भी रात को सारा काम ख़त्म होता, मेरी डायरी जैसे खींचने लगती. मन का सारा दुःख, उसमें उतरता जाता. पता भी नहीं चला, कब दूसरों का दुःख भी, अपना दुःख बनता गया. डायरी के पन्ने भरते गये. इस डायरी के अलावा, शैफाली ही मेरी हमराज़ थी.

आशू अब तीन साल का हो रहा था. अच्छे स्कूल में उसके एडमीशन की चिंता हो रही थी. इस बीच हमारे कॉलेज में साइकोलॉजी के एक प्रोफेसर आये थे. काफी ज़हीन और समझदार. वरुण चौधरी. उन्होंने ही प्रिया से कहा - आप चाहें तो आपके बेटे का देहरादून में एडमीशन करवा सकता हूं. प्रिया ने पहले न कह दिया. फिर सोचा अच्छा है, दूर रहेगा तो अच्छा माहौल मिलेगा. आखिर उसने करा दिया था, असीम का एडमीशन. फीस ज्यादा थी, उसने और ज्यादा ट्यूशनें शुरू कर दी थीं. घर से

बाहर भी ट्यूशन लेने जाती थी. वरुण सर कभी-कभी घर भी आते थे. उनसे वो दुनिया भर की बातें डिस्कस करती.

एक दिन मां की बहुत याद आ रही थी. जब घर पहुंची तो सामने सबसे पहले भाभी पड़ीं, बताया कि असीम का एडमीशन देहरादून हो गया है.

- हां भई, आपका क्या ? यहां तो मिति, निधि को अच्छे अंग्रेजी स्कूल में भी नहीं पढ़ा सकते.

इतने में भैया आये थे - प्रिया, तुम्हारा क्या, तुम तो अपने बेटे को फॉरेन में भी पढ़ा सकती हो.

- पर भैया, इतनी दूर मैं उसे नहीं भेज पाऊंगी.

- क्यों आवारागर्दी करने में सुविधा हो जायेगी !

- भैया, यह क्या कह रहे हैं...?

- पूछो अपनी भाभी से, लोग क्या-क्या कहते हैं तुम्हारे बारे में...

- क्यों भाभी, क्या कहते हैं, और कौन कहता है ?

अब पापा बीच में आये थे, - मैं बताता हूं. बहू की चचेरी बहन रहती है, वही बता रही थी कि सारे दिन या तो तुम बाहर रहती हो, या तुम्हारे घर जाने कौन-कौन आते रहते हैं ?

- पापा, आप भी ! मैं लेक्चरर हूं, ट्यूशन लेती हूं. असीम का भविष्य बनाना है. घर भी लोग आयेंगे, कभी मुझे भी ट्यूशन के लिए जाना पड़ेगा...इसमें अगर गंदी नीयत वालों को बुराई दिखती है तो दिखे. खैर, मैं यहां मां से मिलने आयी थी.

- अम्मा जी सब्जी लेने गयी हैं. जरा देर में आ जायेंगी. आप बैठो. खाना बन रहा है.

- नहीं भाभी...भर गया पेट...

भारी मन से मैं लौटी थी. दो दिन बाद मां आयी थीं. और कहा था, प्रिया ज्यादा न आया करो...वहां...जब होगा मैं मिलने आ जाऊंगी. पर बेटा अकेली रहती हो, बातें तो बनेंगी...

मैंने फिर वरुण सर से कहा था ....सर, प्लीज आप मत आया करिए, घर पर...

- प्रिया, तुम कब तक डरोगी...लोगों से....

एक दिन शैफाली ने कहा था - प्रिया....मुझे लगता है वरुण सर तुझे पसंद करते हैं, शादी..

- शैफाली...हरगिज़ नहीं...अपने आशू को मैं कभी सौतेला पिता नहीं दूंगी.

- पर अपना भी तो सोच...कैसे निकालेगी इतनी बड़ी ज़िंदगी... ?

- और तू शैफ...तूने भी तो शादी नहीं की ?

- प्रिया...मैं तो मजबूर हूं. बीमार मां-बाप, दो छोटी बहनें...

- तो तू भी निकाल तो रही है ज़िंदगी ?

- हां....निकाल तो रही हूं...पर कई बार दिल करता है, मेरा अपना पति हो...अपना एक घर हो...

प्रिया के दुःख में शैफाली का दुःख मिल गया था. अचानक, असीम नींद में डरकर रोने लगा था. प्रिया ने उसे चिपकाकर चूमा. वह गले में ही बाहें डाले-डाले सो गया था. उसके मासूम चेहरे को चूमते ही मेरे मन का रेगिस्तान ममत्व के झरने से गीला हो गया...अगले महीने आशू चला जायेगा, कैसे रह पाऊंगी ? नन्हा सा आशू, कैसे रह पायेगा, मेरे बिना. उसे छोड़कर जब आ रही थी, लिपट गया था, - ममा हम भी चलेंगे आपके साथ.

- हां...ममा..है न ! जल्दी आयेगी, लेने..आप बोलते हो, न बिट्टू बड़े होकर आप प्लेन उड़ाओगे. पायलट बनोगे..तो यहां रहकर पढ़ना पड़ेगा.

एकदम बुझी-बुझी सी वापस लौटी थी. खाली घर में गूंज रही थीं, आवाजें...ममा ढूंढो...आशू कहां छिपा है...ममा...देखो आशू डांस कर रहा है...ममा भूख लगी है. दो दिन आशू की यादों के साथ घर में खुद को कैद कर लिया था. बस डायरी, मैं और आशू की बातें ?

मां के घर जाने की हिम्मत थी नहीं. आखिर तीसरे दिन खुद को कॉलेज जाने के लिए तैयार किया था. वही रूटीन, एक महीने बाद आशू से मिलने गयी. फिर, जब भी आशू छुट्टियों में घर आता, कोशिश करती, उसका हर पल खुशियों से भर दूं. मेरा बचपन उसके साथ लौट आता. फिर जब वो जाता, अचानक लगता, ज़िंदगी न जाने कितनी बढ़ गयी है.

आशू, आई. आई. टी. के फाइनल ईयर में था... अब आ जायेगा, मेरा बेटा मेरे पास. ख़त्म होगा जीवन का अकेलापन. वो आया, पर न जाने कहां खोया-खोया सा रहता. जब मैं चाहती, वो मुझसे ढेर-सी बातें करे, वो अकेला गिटार बजाता रहता. आखिर क्यों अचानक इतना गुमसुम हो गया है...बिट्टू ! अचानक एक दिन उसकी पैंट की जेब खाली करते वक़्त उसके पर्स में से एक फोटो गिरी...लड़की...कौन है ये ?...तो यह है आशू के गुमसुम रहने का कारण...पर क्या मेरा नन्हा-मुन्ना सा आशू इतना बड़ा हो गया है...

- कौन है ये...

- ममा...वो...

- ममा से क्या छिपाना...

- ये रिया है...उसके पापा ने कहा है, जब तक मेरी अच्छी नौकरी नहीं लगेगी...शादी नहीं हो सकती.

- पर बेटा अभी तेरी उम्र ही क्या है !

उसका रिजल्ट आ गया था, टॉप किया था...फिर तो एक से एक नौकरी तैयार थी. मेरे लिए सबसे खुशी का दिन था. अब वो कहेगा. बस ममा आराम करो. पर मैं कहूंगी हां बस एक दो साल और...

पर उसने ऐसा कुछ नहीं कहा. नौकरी लगने पर, रिया के पापा खुद रिश्ते के लिए घर आये थे. पर वो चाहते थे शादी देहरादून में ही हो. मेरे गिने-चुने रिश्तेदार गये. शादी में मां और पापा ही आये थे. भाभी को तो इस बात की खुन्नस थी कि मिति की सगाई टूट गयी थी. रिया बहुत प्यारी थी. पर बहुत रिजर्व थी. आशू का ज्यादा समय अब उसके साथ ही गुज़रता. मेरा अकेलापन और भी बढ़ गया. पर एक साल में आशू और रिया की बेटी आयी थी, अरुषि. रिया, उसे सम्हाल नहीं पाती थी, मैं ही उसे ज्यादा रखती. अब मैंने सोच लिया था आज आशू से कहूंगी...बस अब बहुत कर लिया मैंने काम, अब यह उम्र तो पोती को दुलारने की है.

उस दिन ही, देहरादून से फोन आया था, रिया ने उछलते हुए कहा था, -वाऊ पापा...ग्रेट न्यूज़..

- आशू...आशू..पापा ने स्विट्ज़रलैंड में तुम्हारा जॉब कन्फर्म कर दिया है.

- स्विट्ज़रलैंड....आशू..क्या इंडिया में अच्छा जॉब नहीं...मेरे लिए वहां एडजस्ट करना बहुत मुश्किल होगा...पर खैर कब जाना है...मैं भी वॉलंटरी रिटायरमेंट ले लेती हूं.

- ममा....आप....नौकरी क्यों छोड़ेंगी. अभी तो सिर्फ़ मैं और रिया जायेंगे. अरुषि को भी पहले देहरादून ही छोड़ेंगे. स्कूल में रिया के पापा उसका एडमीशन करा देंगे.

छनाक..छनाक... तो आख़िर, असीम भी एक पुरुष ही है. फिर से मेरी भावनाएं कुचली जा रही थीं, अपने ही बेटे के पैरों तले. मैं उठकर अंदर चली गयी थी...दरवाज़ा बंद करके आंसुओं को बहने दिया था. जरा देर में अरु की आवाज आयी थी..दा S S दी को लो....दलवाजा...गाल्डन चलो...दा S S दी मैं बाहर आयी थी, - आशू..अरु को मेरे पास छोड़ दो...

- ममा..यहां कानपुर में क्या पढ़ पायेगी. हां छुट्टियों में तुम्हारे पास आ जायेगी.

वापस मुझे अकेला कर चले गये थे सब. लगा खामी मुझमें ही है कहीं. खुद को जैसे घर में बंद कर लिया था मैंने. आज चार दिन से कॉलेज भी नहीं गयी. आखिर शैफाली आयी थी...

- प्रिया..क्या हो गया है तुझे ?

उसके गले लिपटकर मैं रोती चली गयी थी...

- अच्छा हुआ, शैफाली तूने शादी नहीं की. अच्छा है, न ही तेरा कोई पति, कोई बेटा है. वरना हर बार छली जाती और मेरी तरह छलनी होती.... उस दिन शैफाली मेरे साथ ही रुकी थी. मैं कुछ नॉर्मल हुई.

...बस बहुत हुआ, अब कोई रिश्ते नहीं, कोई नाते नहीं. आज से मेरी ज़िंदगी सिर्फ़ मेरी. शैफू चल आज मेरा नया जनम हुआ है. हम सेलीब्रेट करेंगे. मैं बाज़ार से सामान लाती हूं. तू तब तक किचन देख

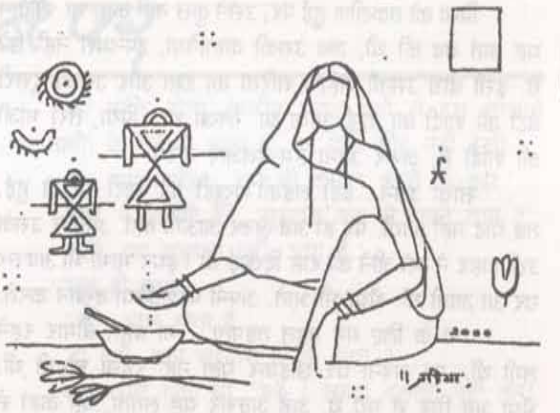

जब मैं लौटकर आयी, शैफू के हाथ में मेरी डायरी थी.

- प्रिया...सॉरी... किसी की डायरी...

- शैफू...तुझसे छिपा ही क्या है ?

- चल फटाफट...खाना तैयार करें...बहुत भूख लगी है. उस दिन शैफाली और प्रिया भूल गयी थीं कि उनकी ज़िंदगी कितनी अकेली है. शैफ़ाली ने कहा था - प्रिया अगर तुझे प्रॉब्लम न हो तो मैं तेरी डायरीज ले जाऊं... ?

चार दिन बाद...जब प्रिया कॉलेज पहुंची. शैफाली ने मिठई का डिब्बा आगे किया...बीच में वरुण ने पीस उठाया, - इस खुशी की पहली मिठई तो भई, हम खायेंगे.

- पर कैसी...खुशी...कैसी मिठई...!

- प्रिया...प्रिया..वाग्देवी प्रकाशन वाले तेरी कहानियां और उपन्यास छापेंगे.

- पर मैंने लिखा ही क्या है...?

- तू नहीं जानती...क्या लिखा है तूने...मैं और वरुण सर दोनों गये थे मिश्रा जी के पास. इतनी पसंद आयी हैं, उन्हें तेरी डायरी.

प्रिया अवाक् थी, - शैफाली, प्लीज मज़ाक बन जायेगा.

पर आख़िर प्रिया का उपन्यास और कहानी संग्रह दोनों छप गये थे. पूरे मीडिया में बहुत चर्चा हुई. फिर अनेकों पुरस्कार. टी.वी. और फिल्म वाले कहानियां मांग रहे थे. प्रिया को मकसद मिल गया था जीने का. अब हर बड़े पेपर में उसका नाम होता, कभी कहीं सेमिनार, तो कभी कहीं... इस बीच उसे स्विट्ज़रलैंड जाने का ऑफर मिला, पर उसने मना कर दिया. क्योंकि वह नहीं जाना चाहती थी. असीम का फोन आता था. उसने कहा, भी, आशू...तुमने तो कहा था, छुट्टियों में अरुषि मेरे पास आयेगी, पर...

- हां ममा...वो एक्चुअली....पापा के साथ मॉरीशस चली गयी है.

प्रिया को तकलीफ हुई पर, उसने कुछ नहीं कहा था. लेकिन यह बात तब की थी, जब उसकी कहानियां, उपन्यास नहीं छपे थे. इसी बीच उसकी सहेली सरिता का ख़त और उसकी दूसरी बेटी की शादी का कार्ड आया था. लिखा था...प्रिया, तेरी भांजी की शादी है, ज़रूर आना हम इंतज़ार करेंगे.

सोचा उसने...बड़ी लड़की पंखुड़ी की शादी भी तो हुई, तब याद नहीं आयी. पर हां अब ज़रूर जाऊंगी वहां. आख़िर उसके उसी शहर ने उसे जीने की राह दिखाई थी ! इधर भाभी भी अक्सर घर आ जाती थीं. भैया भी आते. अपनी परेशानियां बखान करते.

मां के लिए मन बहुत तड़पता... मां बहुत बीमार रहने लगी थीं...पर अपना घर छोड़कर यहां नहीं रहना चाहती थीं. भैया अब चिढ़ से गये थे. उन्हें अक्सर यह लगता, वह कहां से कहां पहुंच गयी और वे बस जहां थे वहीं रह गये.

❑

यादों के दायरे बिखर गये थे. बस फर्रुखाबाद पहुंच गयी थी. जब सरिता के पति के साथ मैं घर पहुंची, तब सरिता की सास गला फाड़ फाड़ कर चिल्ला रही थीं, - इतै बहन को ब्याव है...और जे सर्वेस....आवारागर्दी करत फिर रै हैं. का ज़रूरत रही...तोड़-फोड़ करबे की. जे तो...सामने वाले काका छुड़ाये लाये.

मेरे पहुंचते ही...सरिता आगे बढ़ी...

- अरे प्रिया आओ...अम्मा जी देखो प्रिया आ गयी.

- अरे आओ बिटिया...अरे ओ रामकली पानी लावो बिटिया के लिए...सुना तुम्हारा बड़ा नाम हो रओ है...बिटवा भी का कहे विदेस में है...हमाओ सर्वेस तो ऐसो नालायक...

अम्माजी को सांत्वना देते हुए...मन में भाव उपजा, मेरे बेटे ने मुझे अकेला छोड़ दिया. उसकी अपनी ज़िंदगी है, पर कम से कम अकेली होकर भी मैंने उसे लायक तो बनाया...पर मैं ऐसा कैसे सोच रही हूं...शायद सबके व्यवहार ने ही मुझमें, यह कड़वाहट भर दी है.

जब शादी निपटा कर वापस लौट रही थी, देखा, उस ठूंठे पेड़ पर थोड़ी हरियाली आ रही थी, और चिड़ियाएं वापस उस पर अपना बसेरा बना रही थीं. पर मैं अब किसी के मोह में नहीं पड़ूंगी...मेरी ज़िंदगी बस अब सिर्फ़ मेरी है... पर जब अरुषि अपने नन्हे-नन्हे हाथ मेरे गले में डालकर मेरे गले में झूल जायेगी, तब क्या मैं अरु के मोह से परे रह पाऊंगी !

सी/१५ मोहम्मदी अपार्टमेंट,
राणी सती मार्ग, मलाड (पू.), मुंबई ४०० ०९७

दो ग़ज़लें

✍ अक्षय गोजा

(१)

दिल ही दिल दोस्तों से जलते रहे,
खुद को महिमा-मंडित करते रहे.

प्रभु का कोई अस्तित्व नहीं कहीं,
खुद को ही सर्वोपरि कहते रहे.

सागर का विस्तार सुहाता नहीं,
थोड़ी-सी बूंदों पर मरते रहे.

औरों को गौण बनाने के लिए,
हर पल चर्चित ख़ुद को करते रहे.

चांद अमावस का तेजस्वी लगे,
उजाला सूर्य कलंकित करते रहे.

(२)

ग़र कुव्वत है तो कुछ करके दिखाओ,
न कि दूजों की भूलें गिन के दिखाओ.

छुप कर पीछे से मारो तो कपट है,
दुश्मन हो तो सम्मुख लड़ के दिखाओ.

औरों को शिक्षा देना तो सरल है,
अच्छा होगा, उस पर चल के दिखाओ.

मनभावन बातों से खुश कर दिया है,
सच्चे हो तो हितकर कह के दिखाओ.

जग तेरा सीमित है परिवार तक ही,
जग को परिवार समझ उठ के दिखाओ.

चांदपोल गेट के पास, जोधपुर-३४२ ००१

मैथिली कहानी

पायदान पर

स्टेशन पर पहुंचते ही मेरा कलेजा कांप उठा. इन चींटियों के समूह में स्वयं को कहां और कैसे स्थापित करूं? पर सबसे ज़रूरी बात यह थी कि येन-प्रकारेण मुझे इसी गाड़ी पर सवार होना है. अगली गाड़ी चार घंटे बाद पौने नौ बजे रात में हैं, जो मेरे लिए किसी भी तरह सुविधाजनक नहीं हो सकता है.

डब्बे के भीतर जाने की न तो इच्छा हुई, न ही हिम्मत. भीड़ में किसी तरह ज़गह बनायी. छोटा सा बैग पहाड़ हो गया था.

लोगों के पसीने की गंध से मचली आने लगी थी. लगा उल्टी हो जायेगी. किसी तरह शरीर से सिर को टेढ़ा कर बाहर देखने का प्रयास किया ताकि कुछ हवा मिल सके.

गाड़ी खुलने के बाद भी बच्चों के मुंह बंद नहीं हुए. अपितु रोने की प्रक्रिया और बढ़ गयी. मां दुलारती-पुचकारती-बहलाती थक जातीं और एकाध थप्पड़ जड़ देतीं. किसी-किसी ने बच्चे को उसके बाप की गोद में पटक दिया.

लोगों का अनुमान था कि जितने लोग गाड़ी से उतरे हैं, उससे अधिक सवार हुए हैं.

एक औरत ने किसी को डांटा, 'सीधा होकर खड़ा रहो न! मरद और जनाना में अंतर नहीं बुझता है.'

'क्या करोगी, ट्रेन में ऐसे ही होता है.' पुरुष निर्दोष था या बनने की कोशिश कर रहा था, वह मैं निर्णय नहीं कर पाया.

'ऐसे क्या अंगोरा होगा. कह देती हूं कि सीधा होकर खड़ा रहो, नहीं तो जो न सो हो जायेगा.' औरत उबल चुकी थी, 'उस बीच में जो ज़गह बचा है, वहां खड़ा होगा, सो नहीं तो इधर जनाना के तरफ सटने आता है.'

'वह जो ज़गह देखती हो, तो तुम्हीं क्यों न चली जाती हो.' पुरुष बोला, 'मैं खैरात में रोग नहीं लेना चाहता हूं.'

पुरुष का स्वर सुनकर उत्सुकता बढ़ी. उस खाली ज़गह की ओर किसी तरह अपना सिर घुमाया.

एक कोढ़ पीड़ित भिखमंगा बैठा था.

उस पुरुष और नारी के बीच बहस चल रही थी. ऐसी स्थिति में कोई किसी का अभिभावक नहीं होता है.

गाड़ी के विलंब से चलने का कारण भीड़. भीड़ का कारण मेला.

दूसरे समूह की ओर देखा. एक आदमी को कुछ स्कूली लड़के छेड़ रहे थे.

वह व्यक्ति बोला, 'करीब पचास वर्षों से इस लगपांचे (नागपंचमी) के मेले में आता हूं, पर ऐसी भीड़ नहीं देखी.'

एक लड़का बोला, 'तुम भी कमाल करते हो बूढ़ा.'

दूसरे ने टिप्पणी की, 'सूरदास कब से देखने लगा?'

'नहीं. यह सूरदास नहीं, अंधा है.'

'एक ही हुआ.'

'नहीं. अंतर होता है.'

'हो बूढ़ा. आप सूरदास हैं कि अंधा?'

बूढ़ा खीझ चुका था, 'अरे! ज्यादा बकतूत नहीं करो. तुम लोगों की उम्र के मेरे पोते-पोतियां हैं.'

'ओह, 'गुस्सा गये?' हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया न.'

'जवाब क्या देंगे?'

बूढ़ा उबलने लगा.

'तो सुन लो. जो जनम से अंधा होता है, वह हुआ सूरदास और...'

'और जो कुकर्म के कारण बाद में अंधा हुआ, वह हुआ अंधा...'

'...और यह बाबा अंधा है.'

प्रदीप बिहारी

सारे लड़कों ने एक ही बार ठहाका मारा. अन्य यात्रियों ने भी ठहाके लगाये. क्रोध से कांप रहा था बूढ़ा.

गाड़ी की गति एकदम कम हो गयी थी. शायद कोई स्टेशन को छू रही थी गाड़ी.

एक लड़के ने पुनः संबोधित किया बूढ़े को, 'अरे! तुम तो गुस्सा गये बाबा? बैठ जाओ. क्या करोगे. आज के लड़के ऐसे ही अगलटेंट होते हैं.'

'और बाबा क्या कम हैं? इस कदर गुस्सा किया कि रेलगाड़ी का चक्का ही पंक्चर हो गया.'

गाड़ी रुक चुकी थी. लोगों ने गाड़ी के रुकने का कारण पता किया. स्टेशन नहीं था. दो स्टेशन के बीच ही रुकी थी गाड़ी.

कुछ लोग हवा पीने नीचे उतरे. एक आदमी बोल रहा था, 'बाप की गाड़ी समझते हैं लोग. कदम-कदम पर भैकम करते हैं. गाड़ी समय पर सुथनी चलेगी?'

मैं पायदान पर खड़ा था. पुनः बोगी की ओर देखा. बोगी पतली हो चुकी थी.

एक कोने में दुबकी-सी खड़ी वह ग्राम्य बाला पसीने से तर थी. मैंने सोचा. उसे पायदान की ओर आना चाहिए. स्वच्छ हवा मिल सकती. है. पर ऐसा हुआ नहीं. उसके चेहरे की आतंकमय कछमछी बढ़ती गयी. लगा, मानो मन ही मन गणित कर रही हो. बहुत देर हो जायेगी. गांव पहुंचते शाम क्या रात हो जायेगी.

पुनः एक स्वर उभरा, 'दुनियां के सभी नमूने इसी लाइन में चलते हैं. भैकमतो किया ही, होज़ पाइप भी खोल दिया.'

'अब क्या होगा ?'

उस बाला की आकृति पर पानी पड़ गया.

कुछ देर बाद इंजन से गर्द्धव राग निकला. लोग मुझे धक्का देते हुए भीतर गये और स्वयं को सेट करने लगे.

गाड़ी खुली और गति पकड़ ली.

एक व्यक्ति ने मेरी जिज्ञासा शांत करते हुए कहा कि यह भीड़ विद्यापति नगर में खाली हो जायेगी. मैंने गणित किया. विद्यापति नगर माने...दो स्टेशन के बाद का स्टेशन.

आगत दोनों स्टेशनों पर डिब्बे में लोग बढ़ते गये.

गाड़ी विद्यापति नगर पहुंची. यात्री जल्दी-जल्दी उतरे. उतरने की अफरा-तफरी से लग रहा था कि जैसे उन्हें इस बात का भरोसा ही न हो कि वे डिब्बे से उतर पायेंगे या नहीं.

डिब्बा खाली-सा हो गया. प्रस्तावित ज़गह भर भी लोग नहीं थे. अपने हैंड बैग से मैंने अपनी ज़गह सुरक्षित की और पुनः पायदान पर आकर खड़ा हो गया. लोगों को देखने में आनंद सा आ रहा था मुझे.

ठीक उसी समय एक व्यक्ति आया और मुझ से भीतर जाने का अनुरोध किया. मुझे अच्छा नहीं लगा. मन किया डांट दूं उसे. पर उसकी आकृति देखकर मझे अपना घरेलू नौकर कनुआ याद आया. जब वह किसी संबंधी के यहां जाता है, तो इसी तरह सजा-धजा लगता है. धोती, कमीज़ और अंगोछा. शालीनता से कटे हुए बाल और कनपट्टी से बहता हुआ सरसों का तैल. वह काले रंग का हट्टा कट्टा पुरुष मुझे अच्छा लगने लगा.

वह मेरे सामने खड़ा हो गया और मैं उसे बर्दाश्त करता रहा.

नीचे से एक नारी स्वर सुनाई पड़ा, 'भीतर चले जाओ. पौदान पर नहीं रहो. डिजल इंजिनवाला टरेन है. तुरते हवा हो जाता है.'

'कोनो बात नहीं. तुम चिंता नाहीं करो.'

मैंने उस व्यक्ति की आकृति पर नज़र दौड़ायी. वह न तो रो रहा था, न ही हंस रहा था. मुस्कुराहट भी नहीं थी उसकी आकृति पर.

नीचे खड़ी उसकी पत्नी थी और बगल में खड़ा था छह

प्रदीप बिहारी

५ मार्च १९६३, बिहार के मधुबनी जिलांतर्गत खजौली प्रखंड के कन्हौली मल्लिक टोल में.

लेखन : *मैथिली में 'गुमकी आ बिहाड़ि' और 'विसूवियस' (दोनों उपन्यास), 'औतीह कमला जयतीह कमला', 'खंड खंड जिनगी' और 'मकड़ी' (कथा संग्रह). उपन्यास 'फुटपाथ' का नाट्य रूपांतर. मैथिली में 'हिलकोर', 'मिथिला सौरभ', 'भरि राति भोर' और हिंदी में 'अंतरंग' का संपादन.*

पुरस्कार : *बिहार सरकार द्वारा आयोजित युवा महोत्सव १९९३ में सर्वोत्तम अभिनेता पुरस्कार, जगदीशचंद्र माथुर सम्मान एवं महेश्वरी सिंह महेश पुरस्कार प्राप्त.*

वर्ष का उसका बेटा. पत्नी के हाथ में पानी से भरा अल्युमिनियम का लोटा था, जो मुझे कुछ ज्यादा ही आकर्षित कर रहा था.

उसके बेटे ने हाफ पैंट और गंजी पहन रखी थी. उसके आगे में 'डोरा-डोरि' (धागे का पतला कमरबंध) से बंधा हुआ एक जलखड़ी (धागे का जाल सा बना बटुआ) लटक रहा था, जिससे बीच पैसे का एक सिक्का बाहर झांक रहा था.

लड़का एक पल जलखड़ी को छूता था, तो दूसरे पल बाप की ओर देखता था. उसकी आकृति पर कभी-कभी खुशी फैल जाती थी.

लड़के को देखकर मुझे अपने बेटे की याद आयी. इसी उम्र का है मेरा बेटा. इस समय पढ़ता होगा. ट्यूटर आये होंगे.

पति-पत्नी एक दूसरे की ओर निर्निमेष देख रहे थे.

पत्नी की आंखें नम हो गयीं. आंसू गाल पर मोती बनकर लुढ़कने लगे. पायदान पर खड़ा पति बोला, 'रोओ नहीं, पहुंचनामा तुरंत लिखाकर भिजवा दूंगा. हाल-सूरत पता लग जायेगा. तुम ठीक से रहना. मालिक के यहां का बेसी अबरजात (आना-जाना) से कोई बढ़िया नहीं कहेगा, सो ध्यान रखना. लालमुनि को सहेज कर रखना. छौड़ा बदमास न हो जाये. पैसा-कौड़ी होने पर इसके लिए दस रुपैया पठा दूंगा. होरिला से ट्यूशन पढ़ा देना.

'तुम चिंता मत करो. हम सब कुछ संभाल लेंगे. हम लोगों की चिंता मन से हटा दो. और हां...अपने शरीर पर ध्यान देना. शरीर है, तो सब कुछ है.'

पत्नी ने अपने सिर पर पल्लू को ठीक किया. चारों ओर देखा और पायदान पर खड़े पति के पांव छू लिये.

पति घबड़ाया. बोला, 'नीके रहो...नीके रहो... यह क्या किया ? गांव-घर का कोई देख न लिया हो. हम तो चले जायेंगे, लोग तुमसे मज़ाक किया करेगा.'

लड़के ने भी पिता के पांव छू लिये.

पत्नी ने पुनः कहा, 'पौदान पर खड़ा नहीं रहो. भीतर चले जाओ न. बहुत रेस से चलती है गाड़ी.'

'हमारी चिंता छोड़ो. अब तुम गांव लौट जाओ. लेट हो रहा है.'

पत्नी का बायां हाथ बेटे के सिर पर चला गया. मानो वह पति को आश्वस्त करती हो कि दोनों मां-बेटे हैं. चले जायेंगे.

पति-पत्नी एक दूसरे को जाने के लिए कह रहे थे, पर कोई भी अपनी-अपनी ज़गह से हट नहीं रहा था.

बहुत देर बाद गाड़ी खुलने को उद्यत हुई. लोगों की चहल पहल बढ़ी.

पत्नी ने पुनः उसे पायदान पर खड़ा होने से मना किया और उसने पुनः पत्नी को गांव लौट जाने को कहा.

गाड़ी की सीटी सुनते ही लड़के को कुछ याद आयी. उसने मां के हाथ का लोटा पिता की ओर बढ़ाते हुए कहा, 'बाबू पानी पी लो. अब ट्रेन खुल रहा है.'

पिता ने अपने कंधे से लटकी हुई झोली को संभाला और बेटे के हाथ से लोटा लेकर इच्छा भर पानी पीकर लोटा लौटा दिया.

तीनों प्राणियों की आकृति पर संतोष की लहर फैल गयी.

गाड़ी चलने लगी. पत्नी ने पुनः भीतर जाने का संकेत किया और पति गांव की ओर.

दोनों एक दूसरे को तब तक देखते रहे, जब तक देख सके.

गाड़ी ने गति पकड़ ली.

मेरे साथ पायदान पर खड़ा वह व्यक्ति बाहर नाचते हुए खेत, गांव और पेड़-पौधों की ओर देखता रहा.

मैं उसे ही देख रहा था. वह जैसे बहुत दूर किसी चीज़ को ढूंढ़ रहा था. उसके कलेजे की धुकधुकी उसके कांपते हुए होठें से साफ़-साफ़ परिलक्षित हो रही थी, जिन्हें वह अपने दांतों से दबा रहा था.

थोड़ी देर बाद आश्वस्त होकर उसने मुझसे कहा, 'अब आप खड़े होइए पौदान पर. हम भीतर जाते हैं.'

मुझे लगा कि गाड़ी विद्यापति नगर की सीमा पार कर चुकी है. मैंने पूछा, 'कहां जाओगे ?'

'हावड़ा.' बोलकर वह चुप हो गया. पुनः समय का अंदाजा लगाते हुए बोला, 'लगता है कि मिथिला छूट जायेगी.'

पायदान पर मुझे खड़ा छोड़कर वह भीतर चला गया.

(अनुवाद : स्वयं लेखक द्वारा)

मेनकायन, न्यू कॉलोनी उलाव,
पो. उलाव, बेगूसराय-८५११३४ (बिहार)

लघुकथा

गृहस्थी

✍ पवन शर्मा

उसने ऐसा कभी भी नहीं सोचा था कि गृहस्थी का बोझ एक दिन उसकी कमर तोड़कर रख देगा.

घर में बड़ा होना भी अपराध है - उसने सोचा. कहां तक और कब तक दिखाये अपना बड़प्पन. उसका भी परिवार है. अपने परिवार के लिए भी तो करना है. अपने परिवार के लिए भी तो उसकी जिम्मेदारी बनती है.

'नहीं-अब नहीं कर पायेगा वह.' उसने सोचा. अचानक उसे लगा कि वह भाग रहा है. किससे ?... मालुम नहीं किससे. नहीं-नहीं, वह नहीं भागेगा. जैसा बनेगा -करने की कोशिश करेगा.

पत्नी बेटे को थपकी देकर सुलाने का प्रयास कर रही है. बीच-बीच में बेटा कुनमुना उठता.

"जाओगे ?" पत्नी ने करवट बदलकर पूछा.

"देखूंगा." उसने कहा और अपने सिर पर हाथ फिराने लगा.

"चले जाना. शायद मम्मीजी की तबियत अधिक खराब है."

"वहां राजेश और दिनेश भी तो हैं. देख लेंगे."

"तुम्हारे पहुंचने पर दोनों को ताकत मिलेगी...तुम बड़े हो." जिस बात को वह अभी सोच रहा था, उसकी पत्नी ने कह डाली.

"खर्चा भी तो लगेगा. पता नहीं कितना ?"

"रख लेना. जितना लगे, लगा देना." पत्नी ने कहा और करवट बदल ली, "सो जाओ...तुम्हें सुबह गांव निकलना है."

उसने अपनी आंखें बंद कीं. अम्मा की बीमारी में पता नहीं कितना खर्च होगा ? - उसने सोचा. जो भी खर्च होगा उसे पूरा करने के लिए उसको आगे आने वाले महीनों में न जाने कितने-कितने खर्चों पर नियंत्रण रखना पड़ेगा. ऐसा ही करना पड़ रहा है - जबसे उसने होश संभाला है, जबसे उसने अपनी गृहस्थी बसाई है. गृहस्थी में तो ये सब होता ही रहता है.

विद्या भवन, सुकरी चर्च, जुन्नारदेव,
छिंदवाड़ा-४८०५५१ (म. प्र.)

स्पर्श

अचानक कोई चीज़ आकर नीता के पैर से ज़ोर से टकराई और वह घबराकर कुछ पीछे हट गयी. वह अपनी उदासी में इस कदर डूबी हुई थी कि उसे पता ही न चला कि समुद्र का पानी बढ़ते-बढ़ते घुटनों तक आ पहुंचा था. सूरज का सुर्ख नारंगी गोला ठंडा होने के लिए समुद्र में आधा डूब चुका था. नीता ने ध्यान से उस चीज़ को देखा जो पैरों से टकरा कर अब पानी की लहर के साथ-साथ वापस जा रही थी. गणेश की क्षत-विक्षत मूर्ति ! शायद पिछले दिनों गणेशोत्सव में विसर्जित की गयी होगी. नीता ने सोचा - तब कितनी सुंदर रही होगी यह मूरत और अब इसका अंग...अंग...कितना भयावह लग रहा है.

जुहू बीच पर भीड़ भी बढ़ गयी थी और शोरगुल भी. इस भीड़-भड़क्के से नीता का मन उचट गया था, पर घर जाने का मन भी नहीं हो रहा था. अस्पताल से सीधे यहां आ गयी थी. पूरी तरह से बिखरी हुई. कुछ दिनों पहले एक बड़ी कार के साथ हुई टक्कर ने उनके स्कूटर के साथ-साथ उनके जीवन के सहज प्रवाह को भी रौंद दिया था. इस दुर्घटना में नीता को तो मामूली चोटें ही आयी थीं पर प्रशांत...उसको तो बुरी तरह से घायल कर दिया था. बायां हाथ इतनी बुरी तरह कुचला गया था कि उसे पंजे से लेकर कोहनी तक काटने के अलावा डॉक्टरों के पास कोई चारा ही नहीं था. जब डॉक्टरों ने यह बात बताई थी तो नीता के पास भी कोई विकल्प नहीं था सिवाय आंसू भरी आंखों के. प्रशांत की जान का सवाल जो था.

वैसे भी उस समय सलाह करती भी तो किससे ? अपने घर-रिश्तेदारों को छोड़कर, महानगर में आकर रुपया कमाते हुए जब तक जीवन ठीक-ठक चलता रहता है तब तक पता ही नहीं चलता है कि चारों तरफ भागती इस अथाह भीड़ के रेले में हम कितने अकेले हैं ? पर जब कोई मुसीबत आती है तब पता चलता है कि जो लोग हमारे साथ चलते दिख रहे थे उन सबके रास्ते हमसे अलग हैं. और, तब कमी महसूस होती है अपनों की. उन रिश्तेदारों की जोकि साथ रहते हुए बोझ लगा करते थे. दोस्तों-परिचितों की लंबी फेहरिस्त सिर्फ दो मिनट के लिए आने वालों और फोन करके हाल पता करने वालों का परिचय बन कर रह जाती है.

इस घोर मुसीबत की घड़ी में नीता को अपने-आपको भी संभालना था और प्रशांत को भी. घर को भी देखना था और अस्पताल के चक्कर भी. एकदम अकेली पड़ गयी थी, एकदम अकेली. इलाहाबाद में अपने घर और प्रशांत के घर ख़बर भिजवाई थी, पर उन्हें भी तो आने के लिए समय चाहिए था.

चार दिन बाद जब नीता के मम्मी-डैडी आये तब नीता पहली बार खुल कर रोयी थी. इससे पहले तो परिचितों के सामने रोने में भी संकोच लगता था. मम्मी से लिपट कर जी भरके रोयी थी नीता. इतने दिनों से बूंद-बूंद टपकाते बादल उस दिन टूट कर बरसे.

संजीव निगम

उस दिन से नीता के मन को एक सहारा हो गया था. मम्मी-डैडी की उपस्थिति ने उसे गहरा दिलासा दिया था. उसका बोझ भी काफी कम हो गया था. मम्मी ने घर का काम संभाल लिया था और डैडी ने शाम से लेकर सुबह तक अस्पताल में रुकने तथा दवाई, फल वगैरह लाने की जिम्मेदारी ले ली थी. अपने बेटी-दामाद पर आयी इस विपत्ति का दुख उन दोनों को भी बहुत था पर बड़े होने के एहसास ने उन्हें संभाल रखा था.

नीता और प्रशांत दोनों को अक्सर जुहू बीच आकर समुद्र किनारे टहलने का बड़ा शौक था. एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए, पानी की ठंडक को पैरों पर महसूस करते हुए चलना कुछ अच्छा लगता था.

उस दिन डॉक्टर ने ऐसी बात कही थी जिसे सुनकर वह बुरी तरह से बेचैन हो उठी थी और वह अनायास ही जुहू बीच आ पहुंची थी. आज डॉक्टर जोशी ने कहा था, "मिसेज प्रशांत आपको ज्यादा दुखी होने की ज़रूरत नहीं है. कुछ दिनों बाद हम मि. प्रशांत को नकली हाथ लगा देंगे. फिर उनकी यह कमी काफी कुछ दूर हो जायेगी."

'नकली हाथ' नीता को एक तेज झटका लगा था यह सोचकर. वह बुरी तरह से हिल गयी थी. जुहू बीच पर खड़े-खड़े भी वह इसी बारे में सोच रही थी. उसके मन में समुद्र की लहरों की तरह उथल-पुथल मची हुई थी. डॉक्टर को क्या पता असली-नकली का फ़र्क. उसके लिए सामने पड़ा मरीज़ एक जिस्म भर है या फिर अपने ज्ञान-विज्ञान के परीक्षण की प्रयोगशाला. उसने कितनी आसानी से कह दी यह बात. पर क्या उसने सोचा कि नकली और असली का यह फ़र्क नीता के लिए कितनी बड़ी बात है ?

इस मुंबईया नगरी की बेतहाशा भीड़ के आघातों से बचने के लिए प्रशांत का हाथ पकड़ना ही नीता का सुरक्षा कवच था. उस मजबूत पकड़ का गरम एहसास अपने मौन स्वरों में कितना आश्वस्त करता था. जुहू बीच के किनारे जब हाथ पकड़कर टहलते थे तो कितनी ही प्रेम भरी भावनाएं बिना कहे ही एक दूसरे तक पहुंच जाती थीं. और रात को उसी हाथ का तकिया बनाकर निश्चिंतता से सो जाती थी नीता.

नीता की आंखों में घर जाते वक़्त आंसू थे. उन्हीं रोती हुई आंखों के साथ उसने अपनी मम्मी को डॉक्टर जोशी की बात बता दी. मम्मी ने इस पर कुछ संतोष ही व्यक्त किया और नीता को दिलासा दिया. पर, नीता के मन को चैन कहां था ? मम्मी ने भले कहा कि, "चलो एक हाथ तो बच गया था. इसी में गनीमत मानो कि जान नहीं गयी, सिर्फ़ एक हाथ गया." पर नीता के मन को कौन समझाता ?

रात को सोते-सोते कई बार चौंक कर उठी. उसे सपने में गणपति की अंग-भंग मूर्ति दिखाई देती रही थी. एक बार उसे दिखा कि उस मिट्टी की मूर्ति के भी लोहे के नकली हाथ लगा दिये गये थे. और वह बुरी तरह से बेचैन हो गयी थी. वहां से उठकर दूसरे बेडरूम में अपनी मम्मी के पास आकर उन पर हाथ रखकर लेटी तब बेचैनी थोड़ी कम हुई और उसे नींद आयी थी.

कुछ दिन और अस्पताल में रहकर प्रशांत घर लौट आया था. नीता की जिम्मेदारी काफी बढ़ गयी थी. प्रशांत के दैनिक कामकाज में मदद कराने के साथ-साथ अपने मन का दर्द छिपाकर प्रशांत के मन के दर्द को कम करना था. इस बीच प्रशांत के मम्मी-डैडी आ गये थे और उनके आने पर नीता के मम्मी-डैडी वापस चले गये थे. अब नीता को अपने आंसुओं को सख्ती से रोकना पड़ता था. उन्हें सोखने के लिए मां का दुलार भरा आंचल मौजूद न था बल्कि सास की मीठी ही सही पर झिड़की थी, "तुम भी ऐसा करोगी तो बेचारे प्रशांत का क्या होगा."

फिर नीता ने ऑफिस जाना शुरू किया. प्रशांत की हालत के विषय में सहकर्मियों द्वारा पूछे जाते दिखावटी संवेदना से भरे सवालों का उत्तर देते हुए वह अंदर से झुंझला उठती थी. जब कभी कोई हमदर्दी जताते-जताते इसी तरह के किसी दूसरे किस्से को सुनाने लगता था, तब तो...तब तो कई बार उसका मन करता था कि सामने वाले का मुंह नोंच ले या फिर धक्के मार कर भगा दे. पर यह भी संभव न था. हमारे आसपास की दुनिया के चक्र में आत्मीय से ज्यादा औपचारिक तीलियां लगी हुई हैं और यह चक्र इन्हीं के सहारे घूम रहा है.

घर वापस आती थी तो सोसायटी के गेट से ही पैर बोझ लगने लगते थे. हां, इतने दिनों में एक फ़र्क ज़रूर आया था कि अब प्रशांत उसे घर वापस आया देखकर मुस्करा उठता था. ऑफिस की बातें भी पूछता था और टी वी पर देखी हुई उस दिन की ख़ास

४२ वर्ष, एम.ए. (हिंदी साहित्य व पत्रकारिता), एम.फिल.

प्रकाशन : *कविता, कहानी, नाटक, व्यंग्य विधाओं में सक्रिय लेखन. रचनाएं अनेक पत्र-पत्रिकाओं जैसे कि 'हंस', 'वर्तमान-साहित्य', 'चर्चा', 'सबरंग', 'अमर उजाला', 'दैनिक भास्कर', 'नवभारत', 'नई दुनिया' आदि में प्रकाशित. कुछ रचनाएं संकलनों में संकलित भी. आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण. हंस में प्रकाशित 'दे-गाली' नामक कहानी तथा वर्तमान साहित्य में प्रकाशित 'खरोंच' काफी चर्चित रही.*

विशेष : *१७ नाटक व लघु नाटकों का लेखन. इनमें से १४ नाटक आकाशवाणी के अहमदाबाद व मुंबई केंद्रों से प्रसारित. कुछ नाटकों का मंचन भी हुआ.*

संप्रति : *एक राष्ट्रीयकृत बैंक में मुख्य प्रबंधक (मानव संसाधन विकास).*

ख़बरें भी ज़ोर-शोर से बताता था. बहुत सारे सीरियल जिनका कभी वह औरतों के सीरियल कहकर मज़ाक उड़ाया करता था, अब खुद देखता रहता था और उनकी कहानी का ताज़ातर मोड़ भी नीता को सुना देता था. नीता को लगता था कि 'प्रशांत उसके दर्द को समझता है इसीलिए अपना दर्द छिपाकर उसे खुश रखने की कोशिश कर रहा है.' यह एहसास कभी-कभी तो उसके मन में एक खुशी भी भर देता था.

एक दिन अस्पताल से फोन आया. डॉ. जोशी ने बुलाया था. नीता, प्रशांत व प्रशांत के डैडी वहां गये. डॉ. जोशी व उनके सहयोगी उन्हें एक बड़े से कमरे में ले गये थे. वहां पर दो-तीन तरह के नकली हाथ रखे थे. डॉ. जोशी एक-एक करके वे हाथ निर्विकार भाव से उन्हें दिखाते रहे और उनके फीचर्स इस तरह बताते रहे जैसे कि कोई टीवी-फ्रिज बेचने वाला अपने माल की खूबियां बता रहा हो. नीता के मन में झुंझलाहट की लहरें चक्कर मार रही थीं. वह तो अच्छा हुआ कि प्रशांत व उसके डैडी ने बिना उससे पूछे ही एक हाथ पसंद कर लिया वरना नीता तो न जाने

क्या बक देती ? हाड़ मांस का जिस्म जिसमें संवेदनाओं की ऊष्मा लिये धमनियां सक्रिय रहती हैं, उसका स्थान भला धातु का बना कोई ठंडा आकार कैसे ले सकता है. प्रशांत की उंगलियों के पोर का हल्का सा स्पर्श बता देता था कि उसके शरीर के भीतर छिपे मन में क्या भाव है ? वह इस नकली हाथ से क्या संभव होगा ? नहीं, कभी नहीं !

अस्पताल से बाहर आते हुए प्रशांत व उसके डैडी उस नकली हाथ की खूबियों के बारे में बातें करने में इतने मशगूल थे कि नीता के मौन का उन्हें ध्यान ही नहीं रहा था.

जिस दिन प्रशांत के नकली हाथ लगना था, नीता ज़रूरी काम का बहाना बनाकर ऑफिस चली गयी थी. प्रशांत को अपने डैडी के साथ अस्पताल जाना पड़ा. ऑफिस में भी नीता का दिल हर समय कुछ अजीब तरह से धड़कता रहा था. घर लौटने के ख्याल से ही कंपकंपी सी छूटने लगती थी. पता नहीं क्यों उसका दिल इस बात को स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि, "एक हाथ बिल्कुल नहीं होने से नकली हाथ लगा लेना कहीं बेहतर है, अपने कुछ काम तो प्रशांत स्वयं कर पायेगा.'

खैर शाम को घर लौटना ही पड़ा. धड़कते दिल के साथ उसने कॉल बेल दबायी और एक अनजाना डर लिये खड़ी हो गयी थी. दरवाज़ा प्रशांत ने ही खोला था. नीता ने उसकी ओर देखा और प्रशांत ने मुस्कराते हुए अपना चमचमाता नकली हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया. नीता घबराकर एक कदम पीछे हट गयी थी. उसे समझ नहीं आया कि क्या करे ? आख़िरकार प्रशांत ने ही आगे बढ़कर नीता के कंधे पर धीरे से वह हाथ रख दिया था. एक तेज झटका सा लगा, जैसे कोई बिजली पूरे शरीर में दौड़ गयी हो. पर फिर अचानक ही नीता के मन का डर, घबराहट, अजनबीपन न जाने कैसे अपने आप गायब हो गया था. यह क्या हुआ ? प्रशांत के शरीर से जुड़ने के बाद वह नकली हाथ ठंडा-बेजान नहीं रह गया था. प्रशांत की प्यार भरी भावनाओं की गर्मी उसमें से बहती हुई, साफ़-साफ़ महसूस कर रह थी नीता. और वह भावुक हो उठी थी. इतने दिनों की घुटन-बेचैनी व छटपटाहट की नदी बांध तोड़कर आंखों के रास्ते बह निकली थी. वह आगे बढ़कर प्रशांत से लिपट गयी और प्रशांत ने उसे अपनी दोनों बांहों में समेट लिया था.

उस रात जब वह सोने के लिए लेटी तो एक बार फिर आंखों के सामने गणपति की विगलित मूर्ति की छवि उभर आयी थी. किंतु इस बार नीता ने श्रद्धा के साथ उस छवि को प्रणाम किया और निश्चिंतता से सो गयी.

डी-२०४, संकल्प-II,
फिल्म सिटी रोड,
मालाड (पूर्व), मुंबई -४०० ०९७

लघुकथा

पढ़ाई

✍ राजेंद्र मोहन त्रिवेदी 'बंधु'

- मां...! मां...!! मुझे चप्पल ला दो नहीं तो मैं स्कूल नहीं जाऊंगा, हमारे स्कूल में सब लड़के जूता पहनकर आते हैं और मैं नंगे पांव स्कूल जाता हूं. रास्ते में मेरे पैर में कंकड़ चुभते हैं. यह देखो...यह देखो काले-काले निशान. पैर का तलुआ दिखाते हुए रामू ने कहा.

- बेटा हमारे पास पैसा नहीं है, पैसे के लिए मैं मालकिन से कई बार कह चुकी हूं. लेकिन वह पैसा ही नहीं देती क्योंकि उनके बेटे का जन्मदिन इसी हफ्ते है. इसलिए जब पैसा मिलेगा तुम्हें चप्पल अवश्य ले दूंगी. रामू का तलुआ सहलाते हुए मां ने कहा.

- मां ! यह जन्म दिन क्या होता है ? रामू ने उत्सुकतावश पूछा. बच्चे का प्रश्न सुनकर गोमती की आंखें डबडबा आयीं. वह चाहकर भी कुछ न कह पायी. उसकी आंखें शून्य में कुछ खोजने लगीं.

- मां...! मां...!! यह जन्म दिन क्या होता है ? बताओ तुम चुप क्यों हो गयी. और यह तुम्हारी आंखों में आंसू ! क्या जन्म दिन बुरी चीज़ है ? रामू ने जिज्ञासावश पूछा.

- बेटा...यह बड़े लोगों की बातें हैं. रुपया खर्च करने का एक सुंदर बहाना है. गोमती ने संक्षिप्त उत्तर देते हुए रामू को सीने से लगा लिया. और उसकी पीठ सहलाने लगी.

- मां मेरा जन्म दिन कब मनाओगी ? रामू ने दोनों हाथों से मां के गालों को सहलाते हुए पूछा.

- हां बेटा, ज़रूर मनाऊंगी तेरा जन्म दिन, लेकिन अभी नहीं जब हमारे पास पेट भरने से अधिक रुपया हो जायेगा तब धूम धाम से तेरा जन्म दिन करूंगी. एक खोखली हंसी हंसते हुए गोमती ने कहा.

- मां रुपया कहां मिलता है ? बताओ मां...मैं ढेर सारा रुपया ले आऊं जिससे तुम मेरा जन्म दिन मनाना, तुम्हें किसी के यहां जूठे बर्तन मांजने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, तुम दिन भर हमारे पास रहना, मैं अकेले घर में नहीं रहूंगा. रामू ने दृढ़ निश्चयी स्वर में कहा.

- बेटा ! अभी तुम मन लगाकर खूब पढ़ो. शरीर को तपाने से रुपया स्वयं मिल जाता है. मां ने रामू को दुलारते हुए कहा.

- मां...! मां...!! मैं पढ़ूंगा अब चप्पल नहीं लूंगा. वह झोपड़ी के अंदर जाकर जलते हुए दीपक के सामने बैठकर जोर-जोर स्वर में पढ़ने लगा - क से कबूतर, ख से खरगोश...और गोमती भूख शांत करने के लिए पड़ोस में चावल मांगने चली गयी.

३३१, निराला नगर, निकट हनुमान मंदिर,
रायबरेली-२२९००१ (उ. प्र.)

आमने / सामने

लिखना अपने आपमें एक बड़ी उपलब्धि है

✍ संजीव निगम

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुष्पीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र और अलका अग्रवाल सिगतिया से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है संजीव निगम की आत्मरचना.)

मेरा बचपन से लेकर नौकरी लगने तक का जीवन सफ़र पुरानी दिल्ली की गलियों में बीता था. उस्ताद ज़ौक ने सच ही कहा था, 'कहां जाएं ए ज़ौक, ये दिल्ली की गलियां छोड़कर'. सचमुच एक गहरी कशिश है वहां के माहौल में जोकि सिर्फ़ वहां रहने वाले ही महसूस कर सकते हैं. साहित्यिक माहौल तो खैर वहां क्या था, पर ज़िंदादिली बहुत थी और थे लज़ीज़ चाट के ठेले, मिठाइयों की दुकानें, बेड़मी व आलू की सब्ज़ी का सुबह का नाश्ता और गर्मागर्म समोसे, कचौड़ियों व आलू की टिक्की की शामें.

शुरू-शुरू में मुझे काका हाथरसी की किताबें तथा कर्नल विनोद-हमीद के उपन्यास पढ़ने का चस्का लगा. काका का प्रभाव कुछ ऐसा पड़ा था कि पांचवीं कक्षा में मैंने एक लंबी व्यंग्य कविता अपने स्कूल के टीचरों पर लिख दी जोकि मेरे छोटे भाई राजीव के बैग में पकड़ी गयी. उसने असली रचयिता का नाम बता दिया और मैं धर लिया गया. वह तो स्कूल में पिताजी का रसूख बड़ा जबरदस्त था जिसके कारण मैं सज़ा से बच गया वरना शायद कलमप्रेमी होने के दुष्परिणाम मुझे उसी उम्र में भुगतना पड़ जाते. पर, वहां से कविताएं लिखने की ताऊम्र बीमारी मुझे जरूर लग गयी. उस घटना से काफी देर बाद समझ आया कि साहित्य अगर सही जगह चोट करे तो विचलित ज़रूर करता है.

हायर सेकेन्ड्री के लिए जिस स्कूल में मैं पढ़ा करता था वहां के हमारे हिंदी के शिक्षक श्री हरदयाल जी ने मेरे पिताजी को उर्दू पढ़ाई थी और अब मुझे हिंदी पढ़ा रहे थे. वे सचमुच मुझसे अपने पोते जैसा व्यवहार करते थे. उनकी एक आदत थी कि एक पीरियड में जो पढ़ाते थे, दूसरे पीरियड में उसे अपने शब्दों में लिखने को कहते थे. अनिवार्य रूप से, अपना लिखा सुनाने वालों में मेरा नंबर पहला होता था. वह सुनने के बाद यह भी बताते थे कि उसे अधिक बेहतर कैसे बनाया जा सकता था. उनके कारण मेरे गद्य लेखन में निखार आया.

मैंने ग्यारहवीं कक्षा की परीक्षा कॉमर्स विषय में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी. उस समय प्रथम श्रेणी लाना ही बहुत बड़ी बात हुआ करती थी. अपना मोहल्ला तो क्या आस-पास के मोहल्लों में भी शोर मच गया था. बिरादरी के लोग बधाई देने आ रहे थे और पिताजी को एक बड़ी पार्टी का आयोजन करना पड़ गया था. बी. ए. में मैंने कॉमर्स छोड़कर हिंदी साहित्य विषय चुना तो दादाजी ने बड़ा प्रतिवाद किया किंतु पिताजी ने पूरा साथ दिया था. मेरी तमन्ना एक पत्रकार बनने की थी. जैसाकि मेरे पिताजी भी थे, यह और बात है कि साहित्य पढ़कर भी अंततः नौकरी मिली मुझे कॉमर्स (बैंक) के क्षेत्र में ही.

हिंदू कॉलेज, दिल्ली में बी. ए. (ऑनर्स) हिंदी में प्रवेश मिला और मिला डॉ. मांधाता ओझा, डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण का साथ व मार्गदर्शन. हिंदी ऑनर्स जैसे विषय में लड़कियों की भरमार रहती है और लड़कों की संख्या आटे में नमक बराबर ही होती है. उसमें भी उन दिनों शहरी लड़के कम ही आते थे अतः अपनी बहुत पूछ थी. थोड़ा सा मैं मॉडर्न भी था और हंसी-मज़ाक के स्वभाव वाला भी. हिंदी से संबंधित सभी समितियों में बहुत जल्दी सक्रिय कर दिया गया. उस समय कई साहित्यिक आयोजन भी किये थे जिनमें सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, त्रिलोचन, गिरिजा कुमार, मन्नू भंडारी, प्रेम जनमेजय आदि साहित्यकारों ने भाग लिया था. किंतु सबसे अविस्मरणीय रहा था जैनेंद्र कुमार जी की 'त्यागपत्र' की नायिका पर संगोष्ठी. यह संगोष्ठी तीन बार किसी न किसी कारण से स्थगित होती रही. हर बार हम जैनेंद्र जी के पास जाकर क्षमा याचना करते रहे और वे शांत भाव से अगली बार शामिल होने का आश्वासन देते रहे. चौथी बार संगोष्ठी सचमुच में आयोजित हुई और वे उसमें आये तथा छात्रों और प्राध्यापकों के विचार सुनने

के बाद अपना मंतव्य भी दिया था.

हिंदू कॉलेज में आयोजन से जुड़ी एक याद त्रिलोचन जी के काव्यपाठ संबंधी कार्यक्रम की भी है. मुझे व एक अन्य साथी को त्रिलोचन जी को घर से लाने का दायित्व सौंपा गया था. हम उनका पता पूछते हुए मॉडल टाऊन-३ में घूम रहे थे कि सामने से एक बुजुर्ग आते मिले. उन्होंने कहा - 'चलिए मैं आपको त्रिलोचन जी के यहां पहुंचा देता हूं'. हमने चैन की सांस ली और उनके साथ हो लिये. रास्ते में एक दुकान पर रुक कर कुछ खरीदने लगे तो मैंने अपने दोस्त से कहा, 'अबे कहां इस बुड्ढे के चक्कर में फंस गये खामख्वाह देर हो जायेगी'. खैर वे बुजुर्ग बड़ी शालीनता और विनम्रता से बात करते हुए हम दोनों युवा छात्रों को त्रिलोचन जी के घर ले गये. त्रिलोचन जी के साथ जब टैक्सी में कॉलेज जा रहे थे उन्होंने पूछा, 'ये शमशेर जी आपको कहां मिले ?' मैंने कुछ चौंककर पूछा, 'कौन शमशेरजी ?' त्रिलोचन जी ने कहा, 'वही जो आपके साथ आये थे, शमशेर बहादुर सिंह'. मन ही मन जिस लज्जा का अनुभव हुआ उसका बयान करना मुश्किल है.

दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम. ए. करते समय डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी और डॉ. नित्यानंद तिवारी का विशेष स्नेह हमें प्राप्त हुआ था. 'हमें' से मतलब है हम तीन-चार लड़कों और बारह-तेरह लड़कियों की मित्र मंडली को. 'मित्र मंडली' नाम त्रिपाठी जी का दिया हुआ था. यह मित्र मंडली कक्षाएं अटैन्ड करने से ज़्यादा इंदर चायवाले की चाय पीने, लॉन पर बैठकर या आर्टस फैकल्टी की गैलरी में बैठकर ठहाके लगाने में अधिक श्रद्धा रखती थी. कक्षात्मक अध्ययन के प्रति अपने नास्तिक दृष्टिकोण के कारण अन्य छात्र-छात्राओं की निगाहों में हमारी मंडली 'आवारा मंडली' ही अधिक थी.

एम. ए. के काल के दरम्यान दिल्ली विश्वविद्यालय की कई काव्य प्रतियोगिताओं तथा गोष्ठियों में भाग लिया. उन दिनों के साहित्यिक साथियों में हरजिंदर चौधरी, दिनेश शाकुल, देवेंद्र रस्तोगी, अरुण जैमिनी, गगन गिल के नाम अभी भी याद हैं. मेरी दो कविताएं बड़ी पसंद की जाती थीं. दोनों अलग-अलग ध्रुवों की रचनाएं एक विश्वविद्यालयीन हास्य गीत 'लाइब्रेरी का करके बहाना, आ जा ओ दिलदार, तेरा तड़प रहा है प्यार' और दूसरी सांप्रदायिकता के माहौल में कर्फ्यू के दिनों पर आधारित कविता, 'बंधे जीवन के तीन पक्ष' इस कविता को विनय विश्वास ने 'अंधेरों के खिलाफ' कविता संग्रह में लिया था. विनय ने ही बताया था कि स्व. भवानी प्रसाद मिश्र ने संग्रह की भूमिका लिखकर देते समय पूछा था, 'ये संजीव निगम कौन है ? बड़ी अच्छी कविता लिखी है.' मेरे लिए तो वह सर्वोच्च सम्मान जैसी बात थी.

हिंदू कॉलेज में डॉ. हरीश नवल का आना भी हमारे लिए बड़ा शुभ रहा था. उनकी तथा सुरेश ऋतुपर्ण जी की जोड़ी के साथ-साथ हमारी मस्ती भी घुल मिल गयी. कॉलेज के लॉन पर कई गोष्ठियां आयोजित हुई. कैन्टीन में हंसी ठहाकों के दौर चले और साथ-साथ पढ़ाई भी चली. लड़कियों के मामले में मेरी किस्मत मिली जुली रही. जहां एक ओर विभाग की प्रायः सभी लड़कियां मेरी बेतकल्लुफ दोस्त थीं वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसी भी थी जिन्होंने हमारे 'आई लव यू' वाक्य को हास्य रस की रचना समझा. हमारे ग्रुप में यानि मित्र मंडली के दोस्तों में से डॉ. चरनजीत सिंह आजकल दिल्ली के खालसा कॉलेज में प्राध्यापक हैं. तब वे हिंदी विभाग में पढ़ने वाले एकमात्र सरदार के रूप में प्रसिद्ध थे. एक अन्य मित्र हरिवंश दुबे कलकत्ता के नामी गिरामी वकील हैं और एक महिला मित्र रवि अपना स्वयं का व्यवसाय कर रही हैं. बहुत बड़ी बात है कि लगभग २० वर्षों का अंतराल तथा हजारों किलोमीटरों की दूरी के बावजूद हमारी मैत्री आज तक बनी हुई है. जब भी मैं दिल्ली पंहुचता हूं चरनजीत व रवि के साथ कुछ ठहाकों भरी बैठकें ज़रूर होती हैं.

परिस्थितियों का काफी कुछ सही-सही विश्लेषण कर पाने की अपनी क्षमता के विकास में मैं डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी तथा डॉ. नित्यानंद तिवारी का काफी योगदान पाता हूं. उन लोगों की सुलझी हुई आलोचनात्मक दृष्टि का गहरा प्रभाव मुझ पर पड़ा था.

मेरी गहरी अनिच्छा के बावजूद अंततः मुझे बैंक की नौकरी में आना पड़ा. पत्रकार पिता ने पत्रकारिता को कम पैसेवाला व्यवसाय मानते हुए मुझे उस लाइन में प्रवेश नहीं करने दिया. हालांकि मैं एम. ए. तथा एम. फिल. दोनों में प्रथम श्रेणी प्राप्त था पर तब पक्की लेक्चररशिप मिलने की संभावनाएं सात-आठ साल तक नहीं थीं. वैसे जब एम. ए. में मेरी प्रथम श्रेणी आयी थी तो लड़कियों ने बड़ी हाय तौबा मचाई थी कि एक गैर-पढ़ाकू लड़के को यह उपलब्धि कैसे मिली ? पर वे यह भूल गयी थीं कि हमारे यहां परीक्षाएं ज्ञान के साथ-साथ उत्तर देने के कला-कौशल पर भी निर्भर करती हैं. जब वे रट्टा लगा रही थीं तब हम रणनीति बना रहे थे और अपनी रणनीति के मुताबिक तैयारी कर रहे थे, रातों को घर पर जाग कर.

एम. फिल. में डॉ. नगेंद्र, डॉ. विजयेंद्र स्नातक, डॉ. निर्मला जैन आदि वरिष्ठ प्राध्यापकों व आलोचकों को पढ़ने का सुअवसर मिला था. निश्चित रूप से सबका प्रभाव कहीं न कहीं तो मुझ पर पड़ा ही.

एम. ए. के दिनों में ही डॉ. त्रिपाठी तथा डॉ. नित्यानंद तिवारी के कारण त्रिलोचन जी के विचार निरंतर सुनने को मिलते रहे थे. नॉन कालिजिएट के सामने के लॉन पर चाय की चुस्कियों के बीच उनके सॉनेट व कविताओं का भी खूब आनंद लिया था. मेरे साथ एक दिक्कत हमेशा रही है मेरा मित्र वर्ग जिनके साथ मैं घूमता फिरता रहा हूं हमेशा गैर साहित्यिक रहा है. इसीलिए

साहित्यकारों के समूह में मैंने हमेशा खुद को गायों के बीच भैंस की तरह महसूस किया है.

नौकरी लगने पर पहली पोस्टिंग भावनगर, गुजरात में हुई थी. तब दिल्ली रेलवे स्टेशन वालों को भी नहीं पता था कि भावनगर कौनसी गाड़ी जायेगी ? इसलिए अहमदाबाद मेल में ठेल दिया गया. खैर किसी तरह से भावनगर पहुंच ही गया. नयी ज़गह, नये लोग, नया खान-पान, नयी भाषा - मैंने कैसे शुरू के कुछ महीने उस छोटे शहर में गुज़ारे थे यह मैं ही जानता हूं. तब यानि १९८३ में वहां टीवी भी नहीं था. रविवार के दिन तो दोपहर में चार-पांच घंटे तक सोया या लेटा रहता था. कई बार तो पूरे दिन में मुश्किल से चार-पांच मिनट ही बोल पाता था. वहां किसी से हिंदी में बात करता था तो लोग मुड़कर देखने लगते थे. उस समय बड़ा अजीब लगता था.

वहां पहुंचने के तीसरे दिन का एक वाक्या बड़ा मजेदार है. एक सज्जन मुझसे कहने लगे, "भावनगर की तीन चीज़ें बड़ी मशहूर हैं - गाय, गांठिया और गांडा (पागल). मैंने पूछा, कैसे ? वो बोले, गाय यहां बहुत मजबूत और बहुत सारी हैं, गांठिया नरसी बाबा का बड़ा फेमस है और पागल भी यहां बहुत हैं, चूंकि यह रेलवे टर्मिनस है इसलिए हिंदुस्तान भर के पागल रेल में बैठकर यहां तक पहुंच जाते हैं और फिर यहां उतर भी जाते हैं." उनकी इस बात पर मेरी सूरत देखने वाली थी.

अहमदाबाद तबादला होने पर सूरज प्रकाश, हरिवंश राय, सुलतान अहमद, राजेंद्र जोशी आदि साथियों के साथ परिमल गार्डन में कई गोष्ठियां हुईं. इन गोष्ठियों में न सिर्फ अहमदाबाद बल्कि आसपास के छोटे केंद्रो में हिंदी पढ़ रहे अध्यापक भी भाग लेने के लिए नियमित रूप से आया करते थे. तब आकाशवाणी केंद्र अहमदाबाद के सतीश सक्सेना हिंदी कार्यक्रमों के प्रोड्यूसर थे. उन्होंने कहा कि हमारे पास हिंदी नाटकों के लिए १५ मिनट का स्लॉट है, पर यहां कोई अच्छे हिंदी नाटक नहीं लिखता है इसलिए हम नाटक प्रोड्यूस नहीं करते हैं. मैंने कभी सोचा नहीं था कि कविता, कहानी व व्यंग्य से आगे बढ़कर मैं नाटक या प्रहसन भी लिखूंगा पर इस चुनौती के फलस्वरूप वहां से रेडियो नाटकों का जो सिलसिला शुरू हुआ वह मुंबई आकर भी चलता रहा.

अहमदाबाद आकर छपने का दौर, रेडियो व टीवी प्रसारण का दौर अच्छा चला. कहानी सुनाने के भी खूब मौके मिलने लगे. इन्हीं दिनों एक कहानी लिखी - 'दे गाली'. यह कहानी जिस गोष्ठी में सुनाई उसमें गोविंद मिश्र जी भी मौजूद थे. उन्होंने कहानी की तारीफ करते हुए उसे 'हंस' में भेजने की सलाह दी. वह मेरी मात्र दूसरी कहानी थी. पर, उनके कहने पर 'हंस' को भेज दी. मुझे आश्चर्य तब हुआ जबकि कुछ ही दिनों बाद राजेंद्र यादव जी का स्वीकृति पत्र आया और एक-दो अंक बाद वह कहानी प्रकाशित हुई. उस कहानी की बहुत प्रशंसा हुई और मैं कहानीकार के रूप में भी पहचाना जाने लगा. जितनी भी कहानियां छपीं सब पर पाठकों की अनेकों प्रतिक्रियाएं प्राप्त होती रहीं.

पिछले कुछ वर्षों से मुंबई में हूं. बैंक की नौकरी और साहित्यिक रुझान में कोई तालमेल नहीं है. वैसे भी यहां की लंबी-लंबी दूरियां तय करने के यज्ञ में ही दिन का एक बड़ा हिस्सा स्वाहा हो जाता है. उस पर घर की जिम्मेदारियां. बेचारा एक आदमी और चारों ओर चक्रव्यूह. महानगरीय जीवन, रोजी-रोटी का संघर्ष और एकल परिवार व्यवस्था ने मिलकर सारी रचनात्मक ऊर्जा की ऐसी की तैसी कर डाली है.

फिर भी कुछ न कुछ लिखना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है. हालांकि अनेक बार कोई विचार दिमाग में आता है तो कई-कई दिनों तक उसे काग़ज़ पर उतारने का समय नहीं मिलता है, या फिर यूं कहें कि थका हुआ तन-मन लिखने को तैयार नहीं होता है. पर, यहीं पर कुछ लोग ऐसे भी मिले जिन्होंने मुझसे ज़बरदस्ती लिखवा लिया. डॉ. सोहन शर्मा ने जब अपनी पत्रिका के लिए पुस्तक-समीक्षा लिखने को कहा तो मैं एक बार तो मैं अचकचा गया पर जब उन्होंने सीधे पुस्तकें भेज दीं तो समीक्षा लिखनी ही पड़ी. आकाशवाणी मुंबई की ड्रामा प्रोड्यूसर तनुजा कानडे ने भी ज़िद पकड़कर पांच-छः रेडियो नाटक लिखवा लिये जिनमें दिनेश ठकुर, कामिनी कौशल, विष्णु शर्मा सरीखे कलाकारों ने काम किया. इनमें से तीन नाटक -"अग्नि स्नान" जोकि महाभारत के शांति पर्व पर आधारित है, "कहो-तथागत" जोकि सिद्धार्थ के बुद्ध बनने के बाद कपिलवस्तु आने पर आधारित है और "अग्निशिखा" जो द्रौपदी की भूमिका को लेकर लिखा गया एक पात्रीय नाटक है - अब जब मैं पढ़ता हूं तो स्वयं सोचता हूं कि आत्मा विस्मृति के किन क्षणों में डूब कर ऐसी रचनाएं लिख पाया. 'कथाबिंब' के संपादक अरविंद जी ने भी दो साल तक पीछे पड़कर अंततः यह कॉलम तथा 'स्पर्श' कहानी लिखा ही ली.

यहां पर कई साहित्यिक आयोजनों में गया पर मन नहीं लगा. चेहरे से तो कुछ ही लोग पहचानते हैं. चूंकि गोष्ठियों में सक्रिय बहुत सारे साहित्यकार दूसरों का लिखा पढ़ते नहीं हैं, केवल पारस्परिक जान-पहचान को ही अहमियत देते हैं अतः उनके लिए मेरे अस्तित्व को नकार देना एकदम सरल है. ज्यादातर साहित्यिक किस्म के लोग एक ओढ़ी हुई मानसिकता, ओढ़ा हुआ व्यक्तित्व और ओढ़ा हुआ अहम् भाव लिये हुए मिले. सच पूछे तो मज़ा नहीं आता ऐसे बनावटी माहौल में. हां कुछ अनुभव ज़रूर अलग रहे. एक बार विजय वर्मा कथा सम्मान समारोह के उपलक्ष्य में सूरज प्रकाश के घर पर आयोजित रात्रिभोज में मैंने अपना परिचय दिया तो वहां से चलते समय सुधा अरोड़ा जी अपने आप मेरे पास आयीं और बोलीं, "आपकी कहानी 'खरोंच' मैंने 'नहीं, अब और नहीं,' संकलन में पढ़ी, बहुत अच्छी कहानी है." बिना

तंदूर : पाशविकता की शोध

✍ डॉ. कृष्ण बिहारी सहल

तंदूर में आग है,
यह आप पर है कि आप इसमें रोटियां सेंकते हैं
या रिश्तों को जलाते हैं.
तंदूर में सिकने के बाद रोटी,
भूख मिटाती है जबकि एक लड़की भी
भूख मिटाती है और बाद में जला दी जाती है, तंदूर में.
तंदूर में आप रोटिया सेंकें,
सिंकती रोटियों की गंध से भूख बढ़ती है,
मगर जलने से दुर्गंध दूर दूर तक जाती है,
फिर चाहे रोटी जले या कोई लड़की.
क्या मुकाबला हमारी मेधा का ?
हम नयी राहों के अन्वेषी,
करते हैं नये नये अनुसंधान वर्ना
तंदूर का यह उपयोग,
पता नहीं कितनी शोधों के बाद पता
चला कि तंदूर लड़कियों को जलाने के काम भी
आ सकता है.
रोटी पर मक्खन लगाकर खायें
रोटी स्वादु लगेगी,
पर रोटी पर मक्खन लगाकर जलायेंगे तो
वह चिरांध छोड़ेगा और कितने ही
भरम खोलेगा.

संपादक "तटस्थ", पुलिस लाइन के पीछे,
सीकर (राज.)

इसके बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ?

✍ अशोक सिंह

तुम रोटी खा रहे हो
और दूसरे को भी रोटी खाते देख रहे हो,
दूसरा भूखा तुम्हें देख रहा है
और तुम भी भूखे उसे देख रहे हो,
तुम रोटी खा रहे हो
और दूसरा कोई भूखा तुम्हें रोटी खाते देख रहा है,
कोई दूसरा रोटी खा रहा है
और तुम भूखे उसे रोटी खाते देख रहे हो,
ये चार अलग-अलग स्थितियां हैं
पर चारों एक दूसरे से जुड़ी,
एक-दूसरे को काट रही हैं चौराहे की तरह,
अब इस चौराहे पर खड़े होकर
सच-सच बताओ कि
इन चारों स्थितियों के बारे में तुम क्या सोचते हो ?
पहले के बारे में तुम्हारी सोच क्या है ?
दूसरी स्थिति के बारे में क्या कहना है ?
तीसरी स्थिति आने पर कैसा लगता है ?
और चौथी स्थिति आने पर तुम क्या करोगे ?
सोचो, पर जल्दबाजी में नहीं
स्थिर होकर गंभीरता से सोचना और बताना
पर बताना ज़रूर कि इसके बारे में
तुम्हारा क्या ख्याल है ?

जागृति मंच,
दुमका-८१४ १०१ (झारखंड)

किसी पूर्व परिचय के उनका स्वयं आना और यह कहना मुझे बहुत प्रभावित कर गया था.

मुंबई शहर की ज़िंदगी की कई परतें हैं. संघर्ष के साथ-साथ यहां मस्तियां भी हैं. कुछ मस्तियों का मज़ा मैंने भी लिया है. उसी का परिणाम यह रहा कि, "चांदनी बार" फिल्म देखते हुए मुंह से बेसाख्ता निकला, हां सच डार्लिंग बारों में ऐसा ही होता है. और पत्नी (शशि निगम) की त्यौरियां चढ़ गयीं. कभी-कभार रेडियो जिंगल व कॉरपोरेट फिल्में भी लिखीं. उनमें कोई यश तो नहीं मिला पर पैसा ज़रूर मिला. जब मैं मुंबई आया-आया ही था तब काफी समय फिल्मों के लिए पटकथा व संवाद लिखने तथा सीरियलों के लिए लिखने में बरबाद किया था. इससे हाथ कुछ खास तो न लगा पर ग्लैमर नगरी के ग्लैमर का कुछ अंदाज़ ज़रूर हो गया था.

अब एक इच्छा और जगी है, अपनी रचनाओं के संग्रह छपाने की. बिना पहचान पुस्तक पक्की नहीं बनती है. पर देखिए यह इच्छा कब पूरी होती है. अभी तो जब कभी समय मिलता है तो इस भागादौड़ी से उकताया मन कहने लगता है : आराम बड़ी चीज़ है, मुंह ढंक के सोइए.

डी-२०४ संकल्प-II, फिल्म सिटी रोड,
मालाड (पूर्व), मुंबई - ४०० ०९७.

पुस्तक समीक्षा

ग्रामीण जीवन की सशक्त कहानियां

कृष्ण कुमार

जमुनी (कहानी संग्रह) : *मिथिलेश्वर*

प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,१-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ११०००२ **मूल्य** : १२५ रु.

चर्चित कथाकार हृदयेश के संपादन में प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'प्रतिमान' के अप्रैल १९७८ के अंक में मिथिलेश्वर के प्रथम कहानी-संग्रह 'बाबूजी' की समीक्षा के तहत यह टिप्पणी की गयी थी - 'मिथिलेश्वर का रचना संसार गांव से शहर की ओर संक्रमणशील समाज की विसंगतियों और अंतर्विरोधों का संसार है, जिस पर उनकी शहरी पकड़ है. उनकी कहानियां बढ़ती हुई महंगाई, बेरोजगारी, शोषण, अन्याय, अंधविश्वास और सर्वग्रासी भ्रष्टाचार के प्रति संवेदनशील युवा मन की तीखी प्रतिक्रियाएं हैं, जिनके माध्यम से वे इन सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध एक प्रतिकूल वातावरण तैयार करने की चेतना जागृत करते हैं. किसी भी रचनाकार के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है कि वह अपनी पक्षधरता से समाज की शोषक और उत्पीड़क शक्तियों के षड्यंत्रों का पर्दाफाश करने की समझ और उनके विरुद्ध खड़े हो सकने का नैतिक साहस अपने पाठकों में जगा सके. यही आज के प्रतिबद्ध और जागरूक लेखक की सामाजिक संघर्ष में सक्रिय रचनात्मक हिस्सेदारी है...'

मिथिलेश्वर के बारे में इस आलोचकीय टिप्पणी के अनुसार 'जमुनी' संग्रह में न सिर्फ़ हम 'बाबूजी' संग्रह का विकास देखते हैं, बल्कि कई स्तरों पर नयी ज़मीन तोड़ते हुए भी पाते हैं. विदित है कि राजकमल प्रकाशन से सद्यः प्रकाशित 'जमुनी' कथाकार मिथिलेश्वर का ग्यारहवां कहानी-संग्रह है - इधर की लिखी उनकी ग्यारह नयी कहानियों का संग्रह. एक मंजे और सधे हुए ग्रामीण कथाकार की मिथिलेश्वर की छवि को इस संग्रह की कहानियां और पुख्ता करती हैं. संग्रह की पहली कहानी 'छूंछी' है, जो निम्नवर्गीय समाज के आपसी सरोकारों और रीति-रिवाजों को मजबूती से प्रस्तुत करती है. अपने कथ्य और शिल्प में यह कहानी उनके प्रौढ़ कथा लेखन की बानगी है.

दूसरी कहानी 'विषवृक्ष' आज के गांवों में परिवर्तित यथार्थ को शिद्दत से व्यक्त करती है. लोगों के अंदर निरंतर बढ़ती हैवानियत और क्रूरता के बावजूद हिंसक व्यक्तियों के अंदर शेष बची मानवीय भावनाओं का संधान 'सत की सोर पाताल तक' कहानी में किया गया है. आज के नकारात्मक माहौल में सकारात्मक मूल्यों की स्थापना करती यह कहानी लेखक की आशावादिता को ध्वनित करती है...

'नदी की राह में' तथा 'बैराडीह की चंद्रावती' इस संग्रह की दो लंबी प्रेम कथाएं हैं. इनमें प्रेम के प्रबल आवेग (नदी की राह में) तथा प्रेम के भावुक मांसल पक्ष पर यथार्थ की विजय (बैराडीह की चंद्रावती) से हम रू-ब-रू होते हैं. 'सुबह की प्रतीक्षा', 'भूकंप', 'प्लेग', 'दुर्घटना' तथा 'गूंगा गंगू' नामक कहानियों में जीवन और जगत की बहुविध समस्याओं से हमारा सामना होता है. इन कहानियों की घटनाएं हमारे दैनंदिन जीवन के कार्य-व्यवहारों से ली गयी हैं. इन कहानियों की विशेषता अपने पात्रों की संघर्षधर्मिता में निहित जान पड़ती है.

'जमुनी' इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण और लंबी कहानी है. यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि मिथिलेश्वर के ग्यारह कहानी-संग्रहों में से श्रेष्ठता एवं प्रतिनिधित्व के आधार पर अगर सिर्फ ग्यारह कहानियों का चयन किया जाय तो निःसंदेह 'जमुनी' उस चयन की मुख्य कहानी होगी. यह एक भैंस की कहानी है. गांवों में भैंस पालकर जीने वाले निम्नवर्गीय जीवन की हकीकत है. कहानी 'जमुनी' को कृषक जीवन की महागाथा कहा जा सकता है, जिसमें एक सामान्य भारतीय कृषक परिवार के प्रेम-घृणा, आस्था-विश्वास, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, संपत्ति-विपत्ति और उत्थान-पतन का मार्मिक एवं सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है... सचमुच 'जमुनी' कहानी मिथिलेश्वर के प्रौढ़ और परिपक्व कथा लेखन की बानगी है. औपन्यासिक विस्तार वाली इस कहानी की कथा सिर्फ़ एक रात की है, लेकिन इस एक रात की कथा में ही एक निम्नवर्गीय परिवार के जीवन का पूरा सच उजागर हो उठता है. इस संग्रह की कहानियों की भाषा आंचलिक होते हुए भी आंचलिक जटिलता से मुक्त, सरस और प्रवाहमान भाषा है. मिथिलेश्वर की चिर-परिचित किस्सागोई ने पठनीयता को और असरदार बनाया है. मिथिलेश्वर की सफलता का राज उनकी इस किस्सागोई में ही निहित है. उनकी कहानियां पढ़ते हुए कथारस के प्रवाह में तब हम विराम पाते हैं जब कहानी समाप्त होती है. कहानी में लोककथा जैसी पाठकीयता पैदा कर देना मिथिलेश्वर के कथा लेखन की सबसे बड़ी खासियत है.

मिथिलेश्वर ने अपना यह कथा-संग्रह डॉ. नामवर सिंह के नाम निम्नलिखित शब्दों में समर्पित किया है - 'आलोचक की लोकप्रियता के प्रतिमान डॉ. नामवर सिंह को - जाहिर है, वे प्रख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह को आलोचक की लोकप्रियता का प्रतिमान बताते हैं. यहां मिथिलेश्वर के प्रथम कहानी-संग्रह 'बाबूजी' (१९७६) से 'जमुनी' संग्रह (२००१) तक की उनकी इस सफल कथा-यात्रा को देखते हुए अगर उन्हें भी 'कहानीकार की लोकप्रियता का प्रतिमान' कहा जाय तो शायद अत्युक्ति नहीं होगी.

महावीर स्थान के निकट,
करमन टोला, आरा-८०२ ३०१ (बिहार)

छत्तीसगढ़ का प्रामाणिक विश्लेषण

✍ गुरुदत्त पांडे

गढ़ छत्तीस (गद्य) : *विनोद वर्मा*
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, २१ ए, दरियागंज,
नयी दिल्ली ११० ००२ मू. २०० रु.

कहते हैं उपेक्षितों का कोई इतिहास नहीं होता. अगर होता भी है तो उसे बांचने वाला नहीं मिलता. यही हाल छत्तीसगढ़ का रहा है. अलग राज्य बनने के पहले यह मध्य प्रदेश का सर्वाधिक उपेक्षित क्षेत्र था. आदिवासियों के इस विशाल गढ़ के गौरव का भी अब तक कोई नामलेवा नहीं रहा है. विनोद वर्मा ने 'गढ़-छत्तीस' के माध्यम से छत्तीस गढ़ की समाजिक-सांस्कृतिक और रांजनैतिक परिस्थितियों का प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करने का ईमानदार प्रयास किया है.

हिंदुस्तान में छत्तीसगढ़ की पहचान गरीबी, भूख और अकाल से त्रस्त होकर मजबूरी में मजदूरी करते उन सस्ते, सीधे-साधे रेजा और कुलियों से बनती है, जो छत्तीसगढ़ के मूल निवासी हैं, जिन्हें असल में छत्तीसगढ़ पर राज करना चाहिए. लेकिन ये छत्तीसगढ़ियों की विडंबना रही है कि बाहर से रोज़गार और व्यवसाय के लिए आकर बसे लोग वहीं के होकर रह जाते हैं और छत्तीसगढ़ के आदिवासी साल-दर-साल विस्थापित होते-होते अधिकांश तो कभी छत्तीसगढ़ लौट ही नहीं पाते. उन्हीं विस्थापितों के दर्द को पुस्तक की भूमिका में विनोद कुमार शुक्ल ने यह लिखते हुए सरकार की आंख खोलने का प्रयास किया है कि ऐन मंत्रालय के सामने से स्टेशन तक जाने वाली सीधी सड़क पर झुंड के झुंड छत्तीसगढ़ी गंवई परिवारों का पलायन शायद सरकार देख सकती, बशर्ते मंत्रालय की एक भी खिड़की खुली हो.

छत्तीसगढ़ में जन्मे, पले और बड़े हुए विनोद वर्मा को लंबे समय तक यहां की पत्रकारिता से जुड़े रहने के कारण छत्तीसगढ़ को जानने और समझने का भरपूर अवसर मिला. अपनी पुस्तक में उन्होंने छत्तीसगढ़ के निर्माण को मिथकों से लेकर मौजूदा परिस्थितियों तक जोड़कर किस्सागो की तरह सरल भाषा में बयान किया है. ६०० बरस पहले एक चर्मकार (मोची) के द्वारा बनवाये गये मंदिर में रखे शिलालेख में अंकित तिथि का सिरा पकड़कर छत्तीसगढ़ के सहिष्णु समाज का रेखाचित्र खींचना और ९ अलग-अलग खंडों में इन रेखाचित्रों में रंग भरकर समस्याओं से जूझती छत्तीसगढ़ी समाज की नाचती-गाती एक रंगीन तस्वीर प्रस्तुत करना इस पुस्तक की विशेषता है. 'गढ़-छत्तीस' छत्तीसगढ़ के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन से जुड़े विविध विषयों का मनन-चिंतन और समीक्षात्मक विश्लेषण है.

विनोद वर्मा एक वरिष्ठ पत्रकार होने के साथ अच्छे कहानीकार भी हैं. यही कारण है कि छत्तीसगढ़ समाज को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में यथार्थ और चिंतन का सुंदर मेल दिखाई पड़ता है. पत्रकार होने के कारण उन्होंने जहां एक ओर छत्तीसगढ़ के राजनैतिक परिदृश्य का विस्तृत विवरण दे डाला है, वहीं उनके अंदर का कहानीकार छत्तीसगढ़ी यथार्थ को अनेक उद्धहरणों के सहारे प्रस्तुत करने में पूरी ईनामदारी दिखाता है. अपनी सोच में वे कहीं भी अटकते से नहीं लगते. लेखक ने जिस दृढ़ता से छत्तीसगढ़ समाज की त्रासदियों का चित्रण किया है, उतने ही उत्कट संकल्प से उन सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को बनाये रखने के लिए उन त्रासदियों से जूझने के दृश्य भी अंकित किये हैं. भारत के इतिहास में दक्षिण कोसल या महाकोशल का उल्लेख तो मिलता है, जिसमें छत्तीसगढ़ का ज़िक्र नहीं के बराबर ही है. जबकि कलचुरी राजाओं के काल से ही यह क्षेत्र दक्षिण कोसल कहलाता है. रत्नपुर (वर्तमान में रतनपुर, जहां कलचुरी राजाओं के द्वारा बनाये गये महलों आदि के खंडहर आज भी मौजूद हैं.) के कलचुरी राजाओं के १८ गढ़ और रायपुर के कलचुरियों के १८ गढ़ मिलकर तब ३६ गढ़ बनते थे. ज्ञात-अज्ञात प्रसंगों, जनश्रुतियों एवं पुराणों में वर्णित भौगोलिक विवरणों को आधार बनाकर लेखक ने राम वनवास के संदर्भ में बहुत दिलचस्प विवरण दिया है. दक्षिण कोसल को राजा दशरथ की पत्नी कौशल्या से जोड़कर पुराणों में वर्णित तथ्यों और परिकल्पनाओं के सहारे छत्तीसगढ़ के अस्तित्व का प्रमाण त्रेता युग में भी ढूंढने का प्रयास किया गया है. कहते हैं, भगवान राम ने वनवास के दौरान छत्तीसगढ़ के बीहड़ वनों का रूट (मार्ग) भी तय किया था. वे चित्रकूट से निकलकर सतना, शहडोल, सरगुजा होते हुए रायगढ़ पहुंचे और वहां से बिलासपुर, रायपुर व बस्तर (दंडकारण्य) होते हुए गोदावरी नदी पार करके उनका दक्षिण की ओर निकल जाना तथ्यपूर्ण जान पड़ता है. इस तरह यह पुस्तक पहले खंड 'मिथकों से राज्य तक' में कलचुरी शासकों से लेकर पड़ोस के मराठें, भोंसलों फिर मुगलों और अंत में अंग्रेज़ों के अधीन शासित और शोषित होते हुए १ नवंबर २००० को अलग राज्य बनने तक का विस्तृत विश्लेषण छत्तीसगढ़ के सामाजिक और प्रशासनिक ढांचे को जानने और समझने की दृष्टि से यथेष्ट सामग्री प्रदान करती है. एक पत्रकार होने के नाते लेखक ने छत्तीसगढ़ की राजनैतिक उठापटक का कुछ ज़्यादा ही वर्णन कर दिया है, जिसे संक्षिप्त करके छत्तीसगढ़ के अन्य क्षेत्र बस्तर, सरगुजा जैसे आदिवासी इलाकों के इतिहास और वहां की जीवन पद्धति के बारे में विस्तार से लिखा जा सकता था. लेकिन यह बात समझ में आती है कि लेखक चूंकि मूलतः मध्य छत्तीसगढ़ से जुड़े रहे हैं, इसलिए उत्तर (सरगुजा) और दक्षिण (बस्तर/दंतेवाड़ा) छत्तीसगढ़ की अल्प सामग्री ही इस पुस्तक में मिलती है. हालांकि सरगुजा और बस्तर आदिवासी क्षेत्र होने के कारण छत्तीसगढ़ में शामिल किये गये हैं, लेकिन यह भी सत्य है कि ये दोनों क्षेत्र कभी भी

छत्तीसगढ़ के अंग नहीं रहे हैं. इन दोनों आदिवासी क्षेत्रों की सामाजिक, सांस्कृतिक और आदिम परंपरा छत्तीसगढ़ियों के रहन-सहन से सर्वथा भिन्न है.

पुस्तक के दूसरे खंड 'जल, ज़मीन और जंगल' में चीनी यात्री ह्वेन सांग (६२९ ई.) और अंग्रेज़ अधिकारी जे. टी. ब्लंट (१७९५) की टिप्पणियों से यह स्थापित किया गया है कि आज का अकालग्रस्त छत्तीसगढ़ घने जंगलों, उपजाऊ ज़मीन और खनिज पदार्थों से भरपूर प्रचुर मात्रा में खाद्यान्न उत्पन्न करने वाला क्षेत्र रहा है. अनेक रियासतों की सामंतवादी व्यवस्था ने जल, जंगल और ज़मीन से आकर्षित होकर यहां के भोले-भाले आदिवासियों का भरपूर शोषण किया. उनकी जीवनदायिनी जंगल और ज़मीन पर कब्ज़ा करके उन्हें इतना दयनीय बना दिया कि वे विद्रोह के बारे में कभी सोच भी नहीं सकें. छत्तीसगढ़ में लूट की यह परंपरा विभिन्न कानूनों के माध्यम से मुगलों, मराठें, पिंडारियों और अंग्रेजों तक निर्बाध चलती रही. लेखक ने विभिन्न कालखंडों में चौंकाने वाले आंकड़ों का हवाला देते हुए यह विरोध भी दर्ज किया है कि अंग्रेज़ों के बनाये गये कानून आज भी इन वनवासियों पर लागू हैं. ज़मीन के असमान वितरण और वनों के राष्ट्रीयकरण जैसे कानून आदिवासियों को उनकी अपनी ज़मीन और जंगल से विस्थापित होने को बाध्य करते हैं. जंगल सब कुछ देता है लेकिन नमक नहीं दे सकता. एक किलो नमक के लिए यहां के आदिवासी एक किलो काजू या एक किलो चांदी तक देने को तैयार रहे हैं. छत्तीसगढ़ में सूखे की विकट स्थिति के लिए सरकारी नीतियों को दोषी ठहराते हुए लेखक का कहना है कि यहां के आदिवासी तालाबों की सफ़ाई और रखरखाव का जिम्मा ले लें तो पानी की कमी से छत्तीसगढ़ हमेशा के लिए मुक्त हो जायेगा. फिर छत्तीसगढ़ का किसान मजदूरी के लिए कश्मीर या उत्तरप्रदेश में जाकर कभी आतंकवादियों की गोलियों से तो कभी ठेकेदारों के शोषण से नहीं मरेगा.

लेखक ने स्वतंत्रता के आंदोलन में छत्तीसगढ़ के उन गुमनाम सेनानियों को भी श्रद्धांजली अर्पित की है, जिनके संघर्ष को इतिहास में कहीं ज़गह नहीं दी गयी है. १८५७ की क्रांति से भी बहुत पहले छत्तीसगढ़ में आदिवासियों ने कई विद्रोह किये. बस्तर में गाये जाने वाले लोकगीतों के नायक गुंडाधूर के भूमकाल आंदोलन ने तो अंग्रेजों की नींद हराम कर दी थी. यहीं से भू-सुधार कानूनों की शुरुआत भी हुई. पुस्तक के इसी खंड में संविधान की छठी अनुसूची और लैंड रेवैन्यू कोड का विस्तृत उल्लेख है, जिनसे दुनिया की सबसे पुरानी जनजातियों में से एक बस्तर की आदिम जनजातियों का भला होने के बजाये शोषण ही होता आया है. लेखक ने पूरे छत्तीसगढ़ में बसने वाली विभिन्न आदिम जनजातियों की आंकड़ों सहित विस्तृत जानकारी दी है, जो शोधार्थियों के लिए उपयोगी साबित हो सकती है.

संगीत, नृत्य और गीत सुदूर जंगलों में बसने वाले आदिवासी समाज का अभिन्न अंग है. इस गाते थिरकते समाज की सजीव व्याख्या लेखक ने 'नाचा,और रहस' से लेकर बस्तर की उन्मुक्त 'घोटुल' संस्कृति के माध्यम से की है. गत ५००० वर्षों में जिन जातियों और संस्कृतियों के योग से छत्तीसगढ़ी समाज का निर्माण हुआ, उसका विस्तृत विवरण इस पुस्तक में मिलता है. किस तरह चिकित्सा के अभाव में अंधविश्वासी आदिवासी 'बैगा और टोनही' के माध्यम से झाड़-फूंक और बलि का सहारा लेते हुए अनेक बीमारियों से जूझते हुए तमाम अभावों के बावजूद अपनी समृद्ध लोक परंपराओं के साथ खुश हैं, साधन संपन्न समाज को इनसे सीख लेनी चाहिए. धरती के धन से संपन्न छत्तीसगढ़ का वर्णन करते हुए लेखक इस रहस्य का उद्घाटन करता है कि दुनिया में पहले-पहल लोहा छत्तीसगढ़ के गोंड आदिवासियों ने ही गलाया था. यहां की मानव सभ्यता को पूर्व पाषाणकालीन मानते हुए लोहे के अथाह भंडार वाले इन जंगलों में रहने वाला आदिवासी पाषाण काल के पूर्व भी लोहे का उपयोग जानता था. उन्नत किस्म के लौह अयस्क के अलावा हीरे से लेकर सोना, अलेक्जेंड्राइट, कोरेंडम, टिन, बॉक्साइट, डोलोमाइट, ग्रेनाइट आदि खनिजों के उत्पादन से होने वाली पर्यावरण की क्षति के लिए उचित खनिज और पर्यावरण नीति बनाने का सुझाव भी दिया है, जिससे यहां के जगंल बचे रहें और बरसों से शोषित और उपेक्षित आदिवासियों को उनका हक मिल सके.

लेखक ने छत्तीसगढ़ की नक्सली समस्या की तर्कपूर्ण समीक्षा की है. दुनिया भर में मशहूर लोहे के भंडार से भरा, हीरा, टिन, विश्व स्तरीय ग्रेनाइट की पहाड़ियों और घने जंगलों से लदा पूरे राज्य की आदिवासी चेतना का केंद्र बिंदु बस्तर नक्सली आतंक का पर्याय बन चुका है. एक खोजी पत्रकार की तरह नक्सली नेताओं के वक्तव्य और पीपुल्स वार ग्रुप की ख़तरनाक तैयारियों का ब्यौरा देते हुए विनोद वर्मा जहां एक ओर भोले-भाले आदिवासियों के बीच नक्सलियों के प्रभाव और आतंक की नब्ज़ ढूंढने की कोशिश करते हैं, वहीं दूसरी ओर पिछड़े राज्य के सबसे पिछड़े आदिवासी क्षेत्र के विकास में नक्सलियों को सबसे बड़ा रोड़ा भी मानते हैं. आदिवासी विकास के परिप्रेक्ष्य में नक्सली आतंक से संबधित राजनैतिक-सामाजिक और आर्थिक विवेचना नक्सलियों से निपटने की सरकार की रणनीति की पोल खोलती है.

लेखक पाठक को धीरे-धीरे हाथ पकड़कर उस निष्कर्ष की ओर ले जाता है, जिसकी तरफ़ अब तक सिर्फ़ इशारा ही किया था. उनकी भाषा साधारण पाठक को संबोधित भाषा है. इसमें जहां एक ओर छत्तीसगढ़ के बनने के पूर्व से लेकर अब तक के महत्वपूर्ण आंकड़ें हैं, वहीं शोषण को लेकर विचारोत्तेजक टिप्पणियां और समीक्षाएं भी हैं. सूखे के कारण पलायन से उजड़ती छत्तीसगढ़ी समाज में पसरती उदासी के प्रति लेखक नयी

सरकार को आगाह करते हुए दिखाई पड़ते हैं. साथ ही समूचे छत्तीसगढ़ी समाज से समय रहते निर्णायक प्रतिरोध करने का जैसे आव्हान भी करते हैं. लेखक ने छत्तीसगढ़ के हर अछूते पहलू का एवं छत्तीसगढ़ी जनमानस का समग्र विश्लेषण किया है.

सी-६५, एन.टी.पी.सी., पो. विद्युत नगर,
गाजियाबाद -२०१ ००८ (उ. प्र.)

संस्कृति पर घात-प्रतिघात से चिंतित शायरी

✍ भद्रन पांडेय

काली नदियां-पीले लोग (ग़ज़ल संग्रह) : ***सलीम अख्तर***
प्रकाशक : प्रक्षेप प्रकाशन, सीताबर्डी, नागपुर-४४० ०१२.
मू. १०० रु.

मेरी दिक्कत यह है कि, न तो मैं पेशेवर आलोचक हूं, और न सिद्धहस्त समीक्षक, इसलिए न तो मैं आलोचना-समीक्षा की भाषा जानता हूं, न उसके तेवर. एक कवि, व्यंग्यकार, अथवा पाठक की प्रतिक्रिया ही व्यक्त कर पाऊंगा. अपने ही विद्यार्थी की रचनाओं पर बात करना तो और भी दुष्कर प्रतीत होता है, फिर भी कुछ कहना तो है. सोचता हूं, सलीम ने यह कार्य मुझे क्यों सौंपा, तो उत्तर भी उन्हीं के शेर में मिल गया -

हवा की भूख से सौदा किया है,
चिरागों को खुले में रख दिया है.

सलीम का शायर हर लड़ाई, हर सच्चाई का सामना करने को तैयार है. यदि मुखपृष्ठ के कोने में लिखा 'गज़ल संग्रह' न पढ़ा जाय तो 'काली नदियां-पीले लोग' शीर्षक पढ़ते ही व्यंग्य रचनाओं के समाविष्ट होने का आभास होता है. मंचों पर सशक्त व्यंग्यकार के रूप में स्थापित सलीम अपने पहले प्रकाशन में ग़ज़लकार के रूप में सामने आये हैं. शायद व्यंग्यकार परिस्थितियों से समझौता है, ग़ज़लकार वास्तविकता.

संग्रह का नामकरण ही अपने आप में सशक्त व्यंग्य है, जो भीतर क्या होगा इसका पूर्वाभास करा देता है. नदियों का काला होना, हर क्षेत्र में प्रदूषण की पराकाष्ठा की ओर इशारा करता है. वहीं पीले लोग बीमार, लाचार मनुष्य व मनुष्यता का प्रतीक हैं.

दूध कबूतर, सुर्ख इबादत, काली नदियां, पीले लोग,
भगवा खंजर, हरी कटारी, गंगा तेरा क्या होगा.

गंगा की चिंता तो माध्यम है, संस्कृति पर घात-प्रतिघात से चिंतित शायर रंगों के माध्यम से अलगाव व ओछी, धार्मिक राजनैतिक परिस्थितियों को उजागर करता हुआ सावधान करता है.

आकर्षक मुख्य पृष्ठ पर रेखा चित्र व रंगों का चुनाव स्वयं शायर की भाषा बोल रहे हैं, जो अपने आप में एक उपलब्धि है. कविता चाहे किसी भी शैली में प्रस्तुत की जाये, ग़ज़ल, गीत, नवगीत, आदि आदि, अंततः वह जीवन को ही परिभाषित और व्याख्यायित करती है. अच्छा लगा सलीम ने अपनी ग़ज़लों के जरिये मनुष्य के जीवन को नये से नये अर्थ प्रदान करने की भरपूर कोशिश की है.... ढंग भी निराला है.

वही पे आ के परिंदों का गोल उतरा था,
जहां पे दाम तले सिर्फ़ एक दाना था.

परिवार का उत्तरदायित्व व आज की दयनीय स्थिति पर सटीक कटाक्ष - *बाप के मरने का गम, घर में रहा बस दो ही दिन/तीसरे दिन नौकरी पर उसका बेटा लग गया,* पढ़ते हुए परिस्थितियों की विकरालता मन को हिला देती है.

अच्छा लगा, सलीम - अनारकली का दिवाना ही बनकर नहीं रह गया, प्रारंभ से ही समय की नब्ज को पकड़ विद्रोह को अपनाया, कल्पना की दौड़ से अलग हट वास्तविकता की बात की :

हाथों में रख नकेल तू दिवाने आम की,
ले जायेंगे यही तुझे दिवाने खास तक.

अथवा शिकायत के रूप में -

इन्सां के खूं की प्यासी सदी नाम हमारे,
नक्शे पे रखी सूखी नदी नाम हमारे.

कहते हुए सच्चाई कहने में नहीं हिचकिचाता. समस्याओं पर शायर की पैनी नज़र है :

बेचकर खेत और खलिहान निकल जाते हैं,
गांव से निकले तो फुटपाथ निगल जाते हैं.

पैनी नज़र के साथ कहने का सरल ढंग अपने आप में अलग है.

हास्पीटल पाठशाला की ज़रूरत थी जहां,
अब उसी बस्ती में इक, दारू का ठेका लग गया.

अनेक समस्याओं की चर्चा करता हुआ शायर, भविष्य के लिए आशावादी है, प्रेरणा प्रद है. ये अच्छे लक्षण हैं :

कटे हैं पांव जो उसके तो तंज मत करना,
वो मुश्किलात में हाथों पे चल भी सकता है.
इक हद से ज्यादा भरोसा न उस पे कर लेना,
वो आदमी है, इरादा बदल भी सकता है.

जूझने व उबरने की प्रेरणा देते हुए शेर कहना सलीम की अपनी विशेषता है -

मौत जब आयेगी चले जाना,
तुम अभी से कगार छोड़ो मत.

कहना जीने की कला सिखलाता है.

आज राजनीति ने लोगों को बेईमान, अवसरवादी, भ्रष्टाचारी व शोषक बना दिया है. कविता भी आस पास घूम रही है शायद यही उसी की सार्थकता है. सलीम का ग़ज़लकार, व्यंग्यकार है, चुटकी लेना उसकी फितरत है :

इस सदी में राजनीति की शिकार,
मेरी दाढ़ी तेरी चुटिया हो गयी.

गागर में सागर भरने की बात है, थोड़े में बहुत कुछ कहना, जैसे :

दीमकें ही दीमकें संसद में हैं,
धीरे धीरे देश चाटा जायेगा.

अथवा,

आदमी पच्चीस पर, नेता नहीं कोई मरा,
वोट तो चंगा हुआ, तुझको क्या, तुम खुश रहो.

जैसे शेर कहना आईना बनकर चेहरा दिखाना है.

प्रतीकों के माध्यम से हर क्षेत्र में बहुत कुछ कहा गया है. लैला-मजनू, शीरी-फरहाद आदि की उपमा से परे हट कर यह शेर :

इज़हार अपने प्यार का फिर उसने कर दिया,
फिर याद किस्सा आने लगा देवदास का.

उपमाओं में अपनी अलग मौलिकता को उजागर करता है.

सार में, आज ऊपरी तौर पे जो जितना महान दिखाई देता है, भीतर ही भीतर वह कितना बौना है, इसका अहसास कराते हुए, मानवीय विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से ग़ज़ल के लहज़े में सफलतापूर्वक कहते हुए, सभी विषयों, समस्याओं को पकड़ने में दौड़ लगाई है, फिर भी ग़ज़ल में - *ग़ज़लपन है यह बहुत बड़ी बात है.*

रेलटोली, गोंदिया-४४१ ६१४

लोक जीवन के यथार्थ का खुला दस्तावेज

सुरेश चंद्र शर्मा

अंधेरा जहां उजाला (उपन्यास) : *डॉ. सूर्यदीन यादव*
प्रकाशक : भावना प्रकाशन, १०९-ए, पटपड़गंज, दिल्ली ११० ०९१. मू. २५० रु.

'साहित्य' जीवन के सच का साक्षी होता है. सच भी यही है कि साहित्य 'मनुष्य' के लिए है और 'मनुष्य' साहित्य के लिए है. आज साहित्य के नाम पर बहुत कूड़ा-कचरा छप रहा है. सब को 'साहित्य' मान लेना समय की बहुत बड़ी भूल होगी. लिपि-बद्ध वही सामग्री साहित्य का उपादान बनती है, जिसमें जीवन के सच की सार्थक अनुगूंज ध्वनित हो. इसी सार्थक अनुगूंज को सुदूर तक ध्वनित करने वाली कृति का नाम है - *'अंधेरा जहां उजाला'*. सन् २००३ में प्रकाशित डॉ. सूर्यदीन यादव की इस कृति में स्वातंत्र्योत्तर भारत के अत्यंत पिछड़े ग्रामीण परिवेश की सच्ची व्यथा-कथा का रसपान किया जा सकता है.

'अंधेरा जहां उजाला' में भोगे हुए यथार्थ को लेखक ने अगाध एवं सूक्ष्मतम अनुभवों की कूचिका से रम्य झांकी के रूप में प्रस्तुत किया है. यह उपन्यास वास्तव में गांव समाज की मानवीय-अमानवीय अनेक पर्तों को एक-एक करके खोलता है, जिसमें बुराइयों, अनीतियों के विरुद्ध तेज-तर्रार पात्रों द्वारा जोरदार आवाज बुलंद की गयी है. डॉ. सूर्यदीन यादव का कथारस से सिक्त मन लोक जीवन की रंगीनी और माटी की गंध से आप्लावित है. उनकी लेखकीय दृष्टि का विस्तार बहुआयामी है. अनुभवों की अतल गहराई और दृष्टि का पैनापन उनकी कृतियों को एक नूतन स्वरूप प्रदान करता है. लोक जीवन के उतार-चढ़ाव, घात-प्रतिघात, राग विराग और निर्मल-निश्छल प्रेम के आकाशीय विस्तार का अवलोकन भी किया जा सकता है. 'राम जीत' और 'सुंदरी' के मध्य उपजे प्रेम के विस्तार से पाठकीय मन को एक दिव्य रसवंती दृष्टि मिलती है. इन दोनों पात्रों के निश्छल प्रेम का पारावार उपन्यास के स्वरूप को वजनदार, रंगदार बनाता है.

डॉ. सूर्यदीन यादव ने लोक जीवन पर आधृत एवं आंचलिकता से पूर्ण संपृक्त तीन उपन्यास इस के पूर्व भी लिखे हैं. इस क्रम में "अंधेरा जहां उजाला" उपन्यास चौथे क्रम पर आता है. तथ्य, कथ्य, शिल्प और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से रचनाकार के अन्य उपन्यासों की तुलना में यह उपन्यास बुनावट और कसावट की दृष्टि से भी चुस्त नज़र आता है. "अंधेरा जहां उजाला" के दो सौ चालीस पृष्ठीय कलेवर में कथारस के नये-नये पनघट आया करते हैं, जिससे पाठकीय मन को कहीं कसैलापन तो कहीं खारापन भी महसूस होता है. रचनाकार ने गांवों के मध्य जिस दुःख, दर्द को देखा, परखा और भोगा है, उसके यथार्थ चित्रण के लिए संवेदनात्मक दृश्यावलियां भी पूरी तरह तैयार की हैं. संवेदना की सफल अभिव्यक्ति रचना कर्म की सार्थकता की भी सम्यक पुष्टि करती है. सच तो यह है कि पूरा उपन्यास घटनाओं की घूमती रीलों से भरा है. एक ख़ास तरह का मनोविश्लेषण सभी तरह के पात्रों को लेकर कथाकार ने प्रस्तुत किया है. मनोविश्लेषण की यह कला रचनाकार को भी विश्वदृष्टि प्रदान करती है.

इस उपन्यास में आज़ादी के बाद के गांवों की सच्ची तस्वीर दिखलाई पड़ती है. तत्कालीन समाज में जो अंधकार, अशिक्षा, अज्ञानता, ढोंग, अमानवीयता, भ्रष्टाचार और शोषण व्याप्त था, उसे इस उपन्यास में पूरी तरह से देखा जा सकता है. अनीति, अधर्म और अत्याचार के मुकाबले जन चेतना की आवाज भी बुलंद की गयी है. भले ही गांवों में अज्ञानता और अमानवीयता के अंधेरे छाये हैं किंतु उसी कुहासे के मध्य अपनापन, भाईचारा, मानवीयता और त्याग की धीमी रोशनी भी झिलमिलाती रहती है. रामजीत, दिवाकर, साधव, सुंदरी जैसे पात्र इसी उजाले के प्रतीक हैं. भैरो सिंह तथा उसके सहयोगी साक्षात् अंधेरे के प्रतीक हैं.

"अंधेरा जहां उजाला" उपन्यास जीवन के क्रूर यथार्थ को सहज स्थितियों, मनोभूमिकाओं के साथ प्रस्तुत करता है. आंचलिक उपन्यासों में यह उपन्यास सम्मान के साथ गिना जा सकता है. झोपड़ी, खेत-खलिहान, सिवान, बाग-बगीचे, पोखरा

की मादकता को समेटे उपन्यास का आंतरिक रूप माटी की भीनी-सोंधी खुशबू से सुवासित है. पाश्चात्य चिंतक "गोल्डमाल" ने कहा है कि "रूप (फॉर्म) ही अंतर्वस्तु का निर्धारण करता है. फॉर्म या रूप का अर्थ 'रूपवाद' नहीं है जैसा कि प्रायः ले लिया जाता है. फॉर्म का वास्तविक अर्थ है, रचनाकार की विश्वदृष्टि. इस विश्वदृष्टि से टकराकर ही पाठक उपन्यास के नये अर्थ और मूल्य का निर्धारण कर सकता है". इस कथन के आलोक में "अंधेरा जहां उजाला" उपन्यास लोक रस, लोक रंग एवं लोक संस्कृति के स्वादलोभी पाठकों को अवश्य ही बांधे रखेगा. इस उपन्यास का कलेवर मनोरम है. कृति का मूल्य दो सौ पचास रुपये अधिक है, फिर भी घने अंधेरे के खिलाफ प्रकाश की जो धीमी लौ संघर्ष करती है, उस संघर्ष की तुलना में यह मूल्य कम ही है. माटी के रंग से रंगे इस आंचलिक उपन्यास को लोक जीवन के पारखी लोग अवश्य ही पसंद करेंगे.

मिश्रौली, पत्रालय लंभुआ,
जि. सुलतानपुर-२२२ ३०२ (उ. प्र.)

समय और समाज के प्रति सचेत गीत-कर्म

✍ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

सूनी राहों पर (गीत-संग्रह) : *मदन मोहन उपेंद्र,*
प्रकाशक : जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार, मथुरा (उ. प्र.)
मूल्य : ९०/-

रमेश रंजक ने नये गीत से यह अपेक्षा की थी कि यह तभी सहनीय होगा, जब एक ओर अपने युग के अहसास को ध्वनित करेगा, दूसरी ओर संश्लिष्ट भाषा में यथार्थ की ठोस भूमि पर उतरेगा. मदन मोहन उपेंद्र के गीत-संग्रह 'सूनी राहों पर' को पढ़ते हुए श्री रंजक का यह कथन सटीक लगता है.यह ठीक है कि शुरुआती दौर में श्री उपेंद्र अपनी निजी व्यथा को अभिव्यक्त करना नहीं भूलते, लेकिन उनका युग भी पृष्ठभूमि में बना रहता है. 'भटक रहा हूं अनजाना' शीर्षक गीत में अपना अभीष्ट न पाने की पीर है, लेकिन इसी गीत में 'सिंचन करता रहा द्रुमों का' और 'अपना कह कर सबको गलबांही दी' जैसे पदों से स्पष्ट है कि गीतकार का दर्द अपने आस-पास के यथार्थ की अनदेखी नहीं कर पाया. अपने समय और समाज के प्रति सचेतना इन गीतों को महत्वपूर्ण बनाती है.

यह आकस्मिक नहीं है कि 'स्वर्ण जयंती का अनुमोदन', 'अर्धसदी का अर्थ', 'भटका किये', 'असह अस्वीकार', 'आरती उतारें', आदि गीतों में स्वातंत्र्योत्तर परिवेश के अवमूल्यन और अपकर्ष की चर्चा क्षुब्ध भाव से हुई है. 'चुकी हमारी राष्ट्रभावना' 'जातिवाद का ज़हर घुला है', 'नंगे हुए आचरण सारे', 'अर्थहीन रिश्तों की भाषाएं', 'सिकुड़ता जाता दिलों का द्वार' - ये सब हमारी स्वातंत्र्योत्तर उपलब्धियां हैं. गांधी वादी मूल्यों का दलन और दमन गीतकार को विशेषतः संतप्त करता है :-

अर्धसदी की आज़ादी में, हमने यही कमाया है,
गांधी की प्रतिमा के सम्मुख, मौन स्वयं को पाया है.

एक अन्य गीत में भी राष्ट्रपिता के आदर्शों पर चलने का ढोंग करनेवालों की ख़बर ली गयी है -*'मत गांधी के आदर्शों की चिता जलाओ.'* ऐसे ही कथित भारत भाग्य विधाताओं से गीतकार का भ्रम टूट चुका है और एक गीत में उसकी तल्खी उभर आयी है :-

आरती कब तक उतारें आपकी,
पालकी कब तक उठायें आपकी.

ज़ाहिर है, श्री उपेंद्र के गीतों में परिवेश की प्रामाणिकता भरपूर है. लेकिन उनके गीतों में सिर्फ़ विक्षोभ और प्रतिवाद की मुद्राएं भर नहीं हैं, परिवर्तन के प्रति सकारात्मक विश्वास उन्हें वैचारिक ऊर्जा प्रदान करता है. नयी पीढ़ी से उनकी उपेक्षा है -

यह महल-झोपड़ी का जो भेद बढ़ा है,
तुम उसे मिटा कर ही केवल दम लेना.
ज़िंदगी बोझ का कफ़न ओढ़ जो सोयी,
इस कीट तुल्य जीवन को सद्गति देना.

'कवि ऐसा लिखो' शीर्षक गीत में कवि से भी इसी तरह की अपेक्षा व्यक्त हुई है - *'कवि कुछ ऐसा करो कि गिरते उठ जायें / कवि कुछ ऐसा लिखो कि सोते जग जायें'*. 'शारदे ! वंदना' में भी प्रतिबद्धता का स्वरूप स्पष्ट है -

भावना ऐसी भरो, सुन सभी मुस्कायें,
कामगारों के उरों में, भाव नव आयें.

श्री उपेंद्र के कुछ गीतों में प्रणयानुराग और प्रकृतिराग की दीप्ति भी आकर्षित करती है. 'मौन मधुर आमंत्रण आया है', 'झुकी पलकों का आवर्तन', 'तुमने आ सुधियों को/सहलाया और' आदि पंक्तियों और पदों में प्रेम की कोमल अनुभूतियां संग्रहीत हैं. प्रकृति के प्रति श्री उपेंद्र की संवेदनशीलता कई सुंदर प्रकृति-बिंबों के माध्यम से मुखर हुई है. कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-'

१. दूर तिरी संवलाई नाव, सुआ पंख झीलों के पार.
२. अनजानी पछुआ में, छितर गया बौर.
२. वन की मधु छाया में, घुली-घुली बौर.

इस कृति में श्री उपेंद्र की कई चतुष्पदियां संकलित हैं. इनमें परिवेश की विसंगतियों पर रचनाकार की सीधी नज़र है. 'आदमी हैवान होता जा रहा है', 'धर्म मंदिर का मोहताज नहीं होता है,' 'आसनों के वास्ते ईमान बेचते हैं', आदि उदाहरणों से उसकी चिंताओं को समझा जा सकता है. लेकिन यहां भी उसकी सकारात्मक दृष्टि ध्यान आकर्षित करती है. 'धर्म गीता कुरान तक ही नहीं हैं साथी, धर्म के वेश में इंसानियत भी होती है.'

डी-१३१, रमेश विहार,
अलीगढ़-२०२ ००१,

मौन संवाद

✍ डॉ. वरुण कुमार तिवारी

किसी दिन
जंगल में जाओ
और पूछो एक पेड़ से...
क्या तुम मेरे सूने जीवन में
भर सकते हो प्यार
और असंख्य उंगलियों से
पास बुलाने लगेंगे तुम्हे
पेड़ के पत्ते.
किसी भोर की
पहली किरण के साथ ही
शबनम में नहाये
ताजे गुलाब की पंखुरियों को
सहलाओ जरा,
तुम पाओगे
कोमल संस्पर्श
उतर रहा है
उंगलियों के रास्ते
तुम्हारे दिल में.
किसी चांदनी रात में
ताजमहल की छांव में
सो जाओ
और अपलक निहारो
चांद को / तुम पाओगे
कि वह चांद नहीं
धड़कन है
तुम्हारे दिल की.
पूछना
किसी सांझ
नदी की धारा से...
क्या तूने प्यार किया है ?
और नदी
तुझे एक स्त्री लगेगी.

बरसात की रात की सुबह
जब धुल चुका हो
आकाश सारा
तुम मौन-स्वर में पुकारना
आकाश को
और आंखें बंद कर लेना !
पल-छिन बाद ही
शुरू हो जायेगा
आकाश से तुम्हारा
मौन-संवाद.
सुबह सूरज
सागर से निकले जब
तुम एक गीत गुनगुनाना
तुम्हारा जीवन
एक संगीत बन जायेगा.
सांझ सूरज
सागर की बांहों में
सोने लगे जब
तब तू भी
सुध-बुध खोकर
लिपट जाना
रात की बांहों में
और डूब जाना
इतने सघन प्रेम में
कि न रात बचे न तू !
जब हृदय भरा होता है
अतिरेक में
तब,
दूसरा कोई नहीं होता
तब केवल
मौन ही होता है
तुम्हारा माध्यम.

उस रात

निशीथ बेला में
एक रात मैं
प्रतिक्षारत था
नदी किनारे...
तो देखा मैंने
लहरें शांत थीं
चांद छिप गया था
क्षितिज में कहीं
और असीम बालुका राशि
मेरे पीछे थी.
देखा मैंने
तैर रहे थे
नदी में
आकाश के तारे
और कुछ अधिक
चमक रहे थे
कुछ तारे.
सुना मैंने...
मेरे हृदय-स्पंदन के
संगीत से
सुर मिला रहे थे.
कुछ तारे.
स्पर्श किया मैंने
तारों के अन्तस् को
उस रात,
वहां
परिलक्षित थी.
मेरी अंतः पीड़ा.

स्टेट बैंक कॉलोनी,
वीरपुर-८५४३४०,
जि. सुपौल (बिहार)

जब भूख पर चर्चा होगी...

✍ अशोक सिंह

जब भूख पर चर्चा होगी
तब रोटी का जिक्र आयेगा ही,
जैसे अंधेरे पर बात करो
तो उजाला स्वतः आ जाता है बीच में,
रोटी का जिक्र स्वाभाविक ही नहीं
ज़रूरी भी है भूख के लिए
और भूख के लिए रोटी का सवाल भी.
जब हम रोटी की बात करते हैं
तो ज़ाहिर है -
हम भूखे लोगों की बात करते हैं,
रोटी पर बात करना
भूखे लोगों के पक्ष में खड़े होकर
अघाये लोगों से बहस करना है,
अघाये लोगों का तर्क है कि
रोटी को मुद्दा बनाकर
रोटी पर बहस करना
रोटी की राजनीति करना है,
अगर यह सच है
तो मैं ऐसी राजनीति के पक्ष में हूं.
अब देखना है कि
हमारे पक्ष में कौन-कौन है ??

हाशिये पर रह रहे भूखे बदहाल लोगों से...

जो कुछ कर सकते थे
वे लोग अब रहे नहीं,
जो हैं,
वे सब के सब बैठे हैं थक हार कर, हाथ पर हाथ धरे
उनके टेबुल पर रखी मार्क्स की किताबों पर
जम गयी है धूल,
और जिनके पास शब्द हैं, भाषा है, तर्क है, बुद्धि है
वे सब चुप हैं, मौन-व्रत धारण किये
उनकी जुबान को लकवा मार गया है,
ऐसे में सिर्फ तुम्हीं कुछ लोग बचते हो
जो कुछ कर सकते हो,
माना कि तुम्हारे पास
न शब्द हैं, न भाषा और न ही तर्क
पर तुम गूंगे और अपाहिज नहीं हो,
तुम चीख सकते हो
अपने पेट में लगी धधकती आग को
मुट्ठियों में भर कर,
चीखो ! ओ हाशिये पर रह रहे भूखे बदहाल लोगों !
चीखो और जोर से चीखो !!
इतनी जोर से चीखो ! इतनी जोर से !
कि बावन कोठरी, तिरपन द्वारों के बीच
चैन से सोये आदमी की नींद उड़ जाये
मैं भी तुम्हारे साथ हूं.
ये मरे हुए लोग हैं, नपुंसक लोग हैं
जिनके बीच रहते हो तुम
इनसे कोई अपेक्षा मत करो,
यह तुम्हारे हिस्से की लड़ाई है
जो खुद तुम्हें ही लड़नी है
अपने-अपने ढंग से.

जागृति मंच, दुमका-८१४१०१ (झारखंड)

✍ अक्षय गोजा

ग़
ज़
ल

शुरु हुई बरसात कुछ कुछ,
अकाल को आघात कुछ कुछ.
टूट गयी जुल्मों की हद जब,
मुकाबले की बात कुछ कुछ.
चुनाव के दिन पास आये,
प्रकट हुए जज़्बात कुछ कुछ.
लगे न मैत्री तब अरोचक,
मिलें हमें सौगात कुछ कुछ.
पड़ी अहं पर मार बेहद,
समझ सके हालात कुछ कुछ.
मकां हुए घर टूटने पर,
कहां अब मुलाकात कुछ कुछ.

चांदपोल गेट के पास, जोधपुर ३४२ ००१

प्यार की उम्र नहीं !

✍ रामशंकर चंचल

निशा और राम में बेहद प्यार था. दोनों एक-दूसरे से बहुत प्यार करते. एक दिन भी कॉलेज में ऐसा नहीं जाता जब दोनों की आंखें एक दूसरे को नहीं खोजती हों. प्रतिदिन आपस में उनकी आंखें चार होतीं. दोनों के चेहरों पर हल्की मीठी सी मुस्कराहट खिलती, बस. चार-पांच वर्षों तक प्रतिदिन यही चलता रहा. दोनों ने एक-दूसरे को कभी अपने प्यार का इज़हार करने का साहस नहीं किया. इसी बीच निशा की शादी हो गयी. आज २५ वर्षों बाद अनायास मेघनगर रेल्वे स्टेशन पर दोनों टकरा गये. निशा अपने मायके से ससुराल जा रही थी और राम अपनी पत्नी के मायके. दोनों एक-दूसरे को बहुत देर तक निहारते रहे...एक साथ दोनों ने एक-दूसरे का नाम लिया...फिर खामोश हो निहारते रहे...दोनों की आंखें भर आयी थीं. - कैसी हो निशा ? राम ने सवाल किया. निशा ने कोई ज़वाब ने देते उसी से यही सवाल दोहरा दिया -आप कैसे हैं ? मुझे यह दृश्य देख अपनी कविता याद आ गयी -

"मौन / खामोश / एकटक
तुम्हारी आंखें प्रश्न लिये थीं
- कैसे हो ?
किंतु तुम्हारी आंखों के
प्रश्न का उत्तर मैं न दे सका
क्योंकि यही प्रश्न लिये थीं
उस वक़्त मेरी आंखें."

खैर ! मैं राम-निशा की बात कर रहा था. राम ने निशा के सवाल पर चौंकते हुए, कुछ हड़बड़ाते, घबराते कहा -मैं...मैं आज भी प्रतिदिन याद करता हूं. -मैं भी तो तुम्हें नहीं भुला पायी राम. कहते निशा ने पलकें झुका लीं. उसकी आंखों से शबनम से आंसू दोनों गालों पर लुढ़क आये. राम ने पहली बार निशा को रोते हुए देखा था. उसने हिम्मत कर साहस बटोर अपने कांपते हाथों से उसके गालों के आंसू पोंछ डाले. राम के पहले और आत्मीय स्पर्श ने जैसे ज़ादू सा कर दिया हो...वह राम से लिपट गयी. राम ने उसे अपनी बाहों में कस लिया. उम्र के ५० वर्षों में राम-निशा सब कुछ भूल पागलों की तरह एक दूसरे से लिपटे हुए थे... स्टेशन पर खड़े, गुज़रते लोग इस प्यार को निहारते, खुश होते, चुपचाप मुस्काते चल देते.

१४५, गोपाल कॉलोनी,
झाबुआ ४५७ ६६१ (म. प्र.)

लघुकथाएं

एक री-टेक और

✍ घनश्याम अग्रवाल

"देखिए हीरो साब, पहले आप इस बूढ़े एकस्ट्रा को खींचकर एक चांटा मारेंगे. चार सेकंड तक चांटे की गूंज सुनाई देगी. फिर आप अपना डायलाग कहेंगे.यह चांटेवाला सीन पूरी फिल्म की जान है." हीरो को शॉट समझाते हुए डायरेक्टर ने कहा.

"ऐसी बात है, तो हीरो आज खुद स्टंट करेगा, सिर्फ़ चांटा मारने की एक्टिंग नहीं, बल्कि सच में चांटा मारूंगा. तभी सीन में रियलिटी आयेगी." हीरो के इस सहयोग पर पूरी युनिट खुशी से उछल पड़ी. बूढ़ा एकस्ट्रा चांटा खाने के पहले ही अपना गाल सहलाने लगा. निर्माता ने हंसकर उससे कहा - "अबे, डरता क्या है ? हीरो का चांटा खाकर तेरा भी कल्याण हो जायेगा, घबरा मत, चाटे के हर शॉट पर तुझे सौ रुपये एकस्ट्रा मिलेंगे."

शॉट की तैयारी होने लगी. कैमरा, लाइट, साइलेंस, यस, एक्शन. हीरो ने खींचकर बूढ़े के गाल पर चांटा मारा और अपना डायलाग कहा.

"कट" डायरेक्टर ने कहा - "देखिए हीरो साब, आपको चार सेकंड रुककर डायलॉग बोलना है. यह सीन फिर से लेते हैं." इतने से शॉट के लिए री-टेक करवाना हीरो को अपमानजनक लगा. मगर मान गया. फिर से वही तैयारी और वैसा ही "कट". देखिए हीरो साब, इस बार आप ज्यादा रुक गये. प्लीज एक बार और, डायरेक्टर ने हीरो को पुनः समझाया.

"नहीं-नहीं, बस अब पैकअप, मेरे हाथ थक गये हैं. अब मूड नहीं रहा." हीरो के इस ज़बाव से सारी यूनिट उदास हो गयी. सभी ने हीरो को समझाना शुरू किया. "मान जाइए ना, आज यह शॉट लेना बहुत ज़रूरी है. आपने शॉट बहुत ही अच्छा दिया. बस थोड़ा टाइमिंग हो जाये तो...यह एक सीन पूरी फिल्म पर छा जायेगा. बस सिर्फ़ एक री टेक और प्लीज," कहते हुए निर्माता हाथ-पैर जोड़ने लगा.ना-नुकर कर आखिर हीरो मान ही गया. एक असिस्टेंट, हीरो के हाथ पर आइडेक्स मलने लगा. एक नये जोश के साथ शॉट की तैयारी शुरू हो गयी. "देखिए, अब कोई गड़बड़ नहीं होनी चाहिए. ओ. के. यस रेडी...एक्शन...और कट."

इस बार बूढ़े एकस्ट्रा ने शॉट बिगाड़ दिया था. सारी यूनिट उस पर टूट पड़ी. "कौन है ये एकस्ट्रा ? कौन लाया इसे ? इतना-सा सीन ठीक से नहीं कर सका. निकाल दो इसे. कल से दूसरा एकस्ट्रा आयेगा - बड़ी मुश्किल से तो हीरोजी राजी हुए थे. अब कौन मनायेगा उन्हें."

आख़िर रोता हुआ बूढ़ा, हीरो के पैरों पर गिर पड़ा - "साब, प्लीज एक शॉट और दे दीजिए. मेरी नौकरी का सवाल है. अब ग़लती नहीं होगी." आंख के आंसू चांटे खाये लाल-लाल गाल पर लुढ़कने लगे. हीरो को दया आ गयी. आखिर से मान ही गये. हीरो के मानते ही यूनिट का गुस्सा बूढ़े के प्रति जाता रहा और इस बार शॉट ओ. के. हो गया. हीरो को अच्छा शॉट देने पर सभी बधाइयां देने लगे. चांटा मारनेवाले हाथ को सहलाने लगे. पूरी यूनिट खुश थी कि चलो आज का काम निपट गया.

एकस्ट्राओं का पेमेंट होने लगा. बूढ़े को चार बार चांटा खाने के चार सौ अतिरिक्त मिले. एक कोने में खड़े लाइटमैन ने बूढ़े से पूछा- "तुम्हें तो तीस साल हो गये एकस्ट्रा का रोल करते हुए, फिर तुमसे ग़लती कैसे हुई ?" "दरअसल मैं लालच में आ गया था - प्रोड्यूसर ने हर री-टेक पर सौ रुपये ज्यादा देने को कहा था. जब दो बार हीरो से ग़लती से री-टेक हुआ तो मैंने सोचा एक री-टेक मैं भी जानबूझकर करा दूं तो चौथा शॉट तो लेना ही पड़ेगा. - मुझे लड़की की परीक्षा फीस के चार सौ जो भरने हैं," - यह कह वह खुशी-खुशी अपने लाल हुए गालों को थपथपाने लगा. इस री-टेक में उसने अपनी ज़िंदगी का बेहतरीन शॉट जो दिया था.

अलसी प्लॉट, अकोला ४४४ ००४

ग़ज़ल

अशोक 'अंजुम'

हैरत से देखता हूं कि क्या-क्या बदल गया ।
लौटा जो अब के गांव का नक्शा बदल गया ।।

शादी से पहले लाड़ लड़ाता था किस तरह ।
कहती है अम्मा रोज़ कि बिटवा बदल गया ।।

सुख-दुख को पहले लोग निभाते थे साथ-साथ ।
ये क्या हुआ हर शख्स का चेहरा बदल गया ।।

क्या तुमसे कहूं दोस्त, हवाओं का चलन है ।
तुम बदले और मैं भी तो कितना बदल गया ।।

तफ़तीस हुई, कैद हुई, फिर बरी हुए ।
कल तक जो उनके दर पे था परदा बदल गया ।।

ट्रक गेट नं. १, वैद्य दरगढ़ के पास,
कासिमपुर (पॉवर हाउस), अलीगढ़-२०२ १२७

शराफत उर्फ बीस रुपये

डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल

आधी रात बीत चुकी थी, सुनसान सड़क पर हाथ में सूटकेस लिये एक आदमी तेजी से जा रहा था. पुलिस के दो जवानों ने उसे रोका, "रात को दो बजे कहां से आ रहा है !" एक बोला.

"स्साला ! शक्ल से ही बदमाश नज़र आता है." दूसरा बोला. राहगीर ने कहा कि वह शरीफ आदमी है और बस खराब हो जाने के कारण उसे इतना विलंब हो गया. उसने उन्हें टिकट भी दिखलाया, लेकिन वे दोनों पुलिसवाले उसकी कोई भी बात सुनने को तैयार नहीं हुए.

दोनों जवानों ने उसके सूटकेस की तलाशी ली, पर उसमें कोई भी संदिग्ध सामग्री नहीं मिली.

"ये ऐसे नहीं मानेगा...छंटा हुआ बदमाश है, इसे थाने ले चलो." पुलिस का एक जवान बीड़ी सुलगाते हुए बोला. राहगीर ने बहुत हाथ जोड़े, पर वे ....स्साले... बदमाश... की रट लगाते रहे. उनसे पिंड छुड़ाने के लिए उसने जेब से बीस रुपये निकालकर उन्हें दे दिये.

"फालतू टाइम खोटी किया, पहले ही शरीफों की तरह जेब में हाथ डाल देता तो क्या बिगड़ जाता." पुलिसवाले ने बीड़ी को पांव से मसलते हुए कहा.

राहगीर हतप्रभ था. बीस रुपये ने उसे यकायक शरीफों की श्रेणी में ला खड़ा किया था.

३९०, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा रोड,
इंदौर ४५२ ००९

लेटर बॉक्स

❈ "कथाबिंब" का (जुलाई-सितं. ०३) मिला. प्रत्येक अंक की तरह यह अंक भी अच्छा लगा. आर्थिक कठिनाइयों के बीच रहकर आप पत्रिका बराबर निकाल रहे हैं. यह आपकी संघर्षशीलता है, वर्ना आर्थिक अभाव रहते कई पत्रिकाएं दम तोड़ देती हैं - इस बार की ग़ज़लों ने विशेष प्रभावित किया.

'शेष' के संपादक भाई हसन जमाल का कुंठा भरा पत्र छापकर आपने तो अपनी महानता दिखा दी. मगर इससे 'हसन जमाल' साहब की छोछी मानसिकता की झलक स्पष्ट मिलती है. हसन जमाल साहब हिंदी के अच्छे कहानीकार के साथ कवि भी हैं. निःसंदेह उनकी रचनाओं में संदेह की गुंज़ाइश करने की क्षमता नहीं है - अच्छा लिखते हैं - अतः लेखन के प्रति उन्हें बधाई देता हूं.

मगर उनका पत्र पढ़कर मुझे अफसोस हुआ कि 'कथाबिंब' में आपको कहां सांप्रदायिकता दिख गयी. यदि सांप्रदायिकता दिख भी गयी तो आपको केवल हिंदू में दिखी. क्या आपके मुस्लिम समाज में सांप्रदायिकता नहीं है ? यह एक नग्न सच है कि सबसे अधिक सांप्रदायिकता और कट्टरता तो मुसलमानों में है. ऐसी कोई बात नहीं है कि हर मुस्लिम सांप्रदायिक होता है - जबकि ऐसे मुसलमान भी हैं जो राष्ट्र की धारा के साथ चलते हैं, इस मुल्क को अपना मुल्क समझते हैं. अरे सबसे बड़े सांप्रदायिक तो काँग्रेस, कम्यूनिस्ट और बसपा वाले हैं जो जातीयता का ज़हर घोल रहे हैं. ऐसे में संघ और सांप्रदायिक शक्तियां (जो आप भाजपा और शिवसेना को मानते हैं) यदि हिंदुत्व की बात करती हैं तो आप जैसे जागरूक साहित्यकार उन्हें सांप्रदायिक कहते हैं ? इसका यह मतलब नहीं है कि मैं संघ और भाजपा का कट्टर समर्थक हूं. मैं भी उनका उतना ही आलोचक हूं जो एक लेखक को होना चाहिए. मगर आदरणीय हसन जमाल जी आपने अपनी ओछी मानसिकता बताकर, मेरे मन के भीतर आपके लेखकीय व्यक्तित्व के प्रति जो कुछ सहानुभूति थी उसे ख़त्म कर दिया है. वैसे आपका और मेरा कभी संवाद ही नहीं हुआ. हसन जमाल जी आप अपनी आंखें खोलें, मन के भीतर झांके. फिर कहें असली सांप्रदायिक कौन है ?

✤ रमेश मनोहरा
शीतल गली, जावरा (म. प्र.)

❈ "कथाबिंब" का जुलाई-सितंबर ०३ अंक मिला, आभारी हूं. इससे पूर्व के अंक भी समय से मिलते रहे हैं लेकिन लंबे समय से अंकों पर प्रतिक्रिया नहीं भेज सका, आशा है कि आप अन्यथा नहीं लेंगे. इस अंक की अधिकांश कहानियां महिलाओं को केंद्र में रखकर लिखी गयी हैं. पारिवारिक विघटन आज के समय की एक बड़ी समस्या है. कई बार छोटे-छोटे अहम् परिवार के टूटने का कारण बनते हैं और ऐसी स्थिति में एकाकी जीवन संभवतः वर्तमान दौर की नियति बन चुका है. इन स्थितियों में भावनात्मक जुड़ाव और

(कुछ और प्रतिक्रियाएं ....पृष्ठ ३ के आगे)

संवेदनशीलता जैसी बातें बेमानी लगती हैं, जहां हम अपने-पराये के अंतर में हर रिश्ते से ही मुंह मोड़ने के लिए तैयार हैं वहां सामाजिक सरोकारों की बात करना फिजूल है.

इन मनःस्थितियों में डॉ. भगीरथ बड़ोले की कहानी एक कुत्ते के पिल्ले के प्रति बच्चे के लगाव के माध्यम से जैसे मृत संवेदनशीलता को जाग्रत करने का प्रयास करती है. नेपाली कथाकार परशु प्रधान की कहानी महज बूढ़ी बीमार मां के प्रति रिश्तों में आये बदलाव को ही अभिव्यक्त नहीं करती बल्कि सुसंपन्न समाज के चरित्र को भी उजागर करती है. डॉ. वासुदेव की कहानी एक ऐसा कड़ुआ सच बयां करती है जहां बेटी समान युवती के साथ कामलिप्सा को आतुर पुरुष को अपनी हैवानियत का अंदाज तब होता है जब उसकी अपनी ही पत्नी द्वारा आईना दिखाया जाता है. अंक की अन्य कहानियां भी हृदयस्पर्शी हैं.

'आमने-सामने' में अलका अग्रवाल सिगतिया ने बेबाकी से अपने जीवन व रचनाकर्म से जुड़े पृष्ठों को उलटा है. नरेंद्र कौर छाबड़ा की लघुकथा व सुरेश 'सलिल', लालजी 'राकेश' और महेश कटारे 'सुगम' की कविताएं अच्छी लगीं. संपादकीय में मुंबई बम विस्फोट व बेस्ट बेकरी को लेकर आपकी टिप्पणियां सार्थक हैं. अच्छा किया कि आपने इस अंक में "शेष प्रकरण" को विराम दे दिया. लघुकथाओं व कविताओं के चयन में ध्यान देने की ज़रूरत है.

✤ मोहन सिंह रावत
रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल-२६३ ००२

❈ "कथाबिंब" (जुलाई-सितं ०३) मिला. आप कथा-चयन और संयोजन में कमाल करते हैं. इस अंक की 'प्रेत-मुक्ति', 'पत्थर की अहिल्या' और 'लगाव' कहानियों ने विशेष आकर्षित किया, लघुकथाएं थोड़ी कमज़ोर लगीं, पर अशोक आलोक तथा मनोज अबोध की ग़ज़लों ने तथा सुरेश सलिल की कविताओं ने मन को मोहा.

सीमेन द बोउवा ने लिखा है - 'स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बना दिया जाता है.' यानी 'स्त्री' कमजोर नहीं होती, उसे कमज़ोर बनाया जाता है. मारवाड़ी समाज ने अलका अग्रवाल सिगतिया जैसे स्त्री-व्यक्तित्व को स्त्री बनाया है, पर उनमें अभी भी साहस बाकी है कि वे उस समाज की ख़ामियों को इंगिति दे सकें. बधाई, सिगतियाजी ! लेखन जारी रहे.

'सागर / सीपी' में भाई सुरेश सलिल जी का साक्षात्कार उनके बेबाक रचना-व्यक्तित्व को उजागर करता है. रचनाकार के नेपथ्य की जानकारी प्रत्येक अंक में आप देते हैं. बधाई.

✤ रमेश नीलकमल
अक्षर विहार, अवंतिका मार्ग, जमालपुर-८११ २१४ (बिहार)

❖ "कथाबिंब" का जुलाई ०३ अंक मिला. धन्यवाद. अभी अंक की कुछ रचनाएं ही पढ़ी हैं. मुकेश शर्मा की लघुकथा 'अस्तित्व की तलाश' एक प्रचलित लोककथा है जिसे मैं लोगों से पहले भी सुन चुका हूं. हसन जमाल व पत्रिका के संपादक का झगड़ा अपनी ज़गह है. वैसे भी बात सिर्फ़ उतनी नहीं होती है जितनी किसी पत्रिका का संपादक अपनी पत्रिका में करता है. डॉ. दिवाकर हसन जमाल के ऊपर हल्के ढंग से कटाक्ष करना ठीक नहीं है. अगर ३५ साल पहले किसी व्यक्ति ने 'सरिता' में कहानियां लिखी हैं तो उसकी जानकारी प्राप्त कर वे क्या प्रदर्शित करना चाहते हैं. अगर उन्होंने लिखी भी हैं तो उसी पत्रिका के लिए लिखी हैं न जिसके ३५ वर्ष पूर्व आप नियमित पाठक थे ?

❖ राम प्रकाश 'अनंत'
१४२, जहांगीर पुरी, नयी दिल्ली-११००३३

❖ "कथाबिंब" का ताज़ा अंक मिला. आभार. अंक में श्री हसन जमाल का पत्र पढ़कर आश्चर्य हुआ. वास्तव में हसन जमाल जी कितनी कमज़ोर दीवार के सहारे खड़े हैं. जरा सी हवा चली दीवार या वे खुद कांपने लगे. जहां तक 'शेष' पत्रिका का प्रश्न है तो जग ज़ाहिर है उस पत्रिका में हिंदी का नामोनिशान नहीं है. "हिंदवी" को पुनर्स्थापित करना चाह रहे हैं, वे. "कथाबिंब" को वे भला क्यों पढ़ें ? हालात के दोनों पहलू उन्हें पसंद नहीं. बेस्ट बेकरी की सिर्फ़ चर्चा कीजिए, गोधरा की नहीं. घिन आती है ऐसी छद्म प्रगतिशीलता से.

❖ अनिरुद्ध सिन्हा
गुलजार पोखर, मुंगेर-८११२०१ (बिहार)

❖ प्रवास से लौटने पर "कथाबिंब" का जुलाई-सितंबर ०३ अंक मिला. आभारी हूं. इसमें 'शेष' के संपादक 'हसन जमाल' का पत्र आपने छापा है. मुझे समझ में नहीं आता कि किस आधार पर वे 'कथाबिंब' में प्रकाशित सामग्री को कचरा सामग्री और आपको भगवा संपादक मानते हैं ? और वे यह कहने से भी नहीं चूकते कि भविष्य में आप 'कथाबिंब' न भेजें. ...वैसे भी मैं उसे पढ़ता नहीं हूं.

श्री हसन जमाल के ये विचार उनके व्यक्तिगत विचार हैं उन्हें हिंदी के साहित्यकारों और पाठकों की 'कथाबिंब' के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए.

'कथाबिंब' बहुत अच्छी निकल रही है. सामग्री अच्छी है. कृपया कविताओं के चयन में कठोर संपादकीय निर्णय लें.

❖ सुरेंद्र रघुवंशी
महात्मा वाड़े के पीछे, अशोक नगर-४७३ ३३१ (म. प्र.)

कुछ कही, कुछ अनकही

(. . . पृष्ठ ४ से आगे)

भी खिड़की से कहीं भी आने-जाने के टिकट खरीदे जा सकते हैं. फोन कनेक्शन पाने के लिए अब इंतज़ार नहीं करना पड़ता. फोन दरें भी बहुत कम हो गयी हैं. मोबाइल फोन भी काफी सस्ता हो गया है. आप चाहें तो पूरी दुनिया अपनी मुट्ठी में बंद कर सकते हैं. कीमत कम होने के कारण आज कंप्यूटर खरीदना मध्य वर्ग की पहुंच में है. निजी कंप्यूटर को अनगिनत उपयोगों में लाया जा सकता है. घर बैठे आप 'बिजनेस' कर सकते हैं और अच्छा-खासा पैसा कमा सकते हैं. कंप्यूटर ने नौकरी के भी नये अवसर उपलब्ध किये हैं. 'सॉफ्ट वेयर' इंजीनियरों की भी मांग बढ़ी है. 'काल सेंटर्स' और 'ऑउट सोर्सिंग' में भी अनेक युवक और युवतियों को काम मिला है. फोन, कंप्यूटर और महामार्गों का होना ये 'कनेक्टिविटी' के ऐसे साधन हैं जो भारत को कहीं से कहीं पहुंचा सकते हैं.

मैं आशावादी हूं इसलिए जो गिलास कुछ लोगों को आधा खाली नज़र आता है वह मुझे आधा भरा दीखता है. पिछले एक वर्ष में भारत-पाक संबंधों में भी काफी सुधार आया है. अभी हाल में संपन्न हुई क्रिकेट श्रंखला ने बहुत से हृदयों को आपस में जोड़ा है. कश्मीर की वादी एक बार फिर गुलज़ार है. वर्ष २००२ और २००३ की गर्मियों में महज़ ४-५ हज़ार सैलानी कश्मीर जा पाये थे. वर्ष २००४ में उम्मीद है कि यह संख्या पांच लाख तक पहुंचेगी. चीन के साथ भी रिश्तों में सुधार आया है. अभी हाल में चीन ने पहली बार नक्शों में सिक्किम को भारत का हिस्सा दिखाया है.

यहां पर केवल कुछ ही परिवर्तनों को गिनाया गया है. अगर आप देखना चाहें तो बहुत से अन्य क्षेत्रों में भी बदलाव नज़र आयेंगे. सवाल यह नहीं होना चाहिए कि श्रेय किसको दिया जाये ! आज आवश्यकता है कि हम अपने 'निगेटिज़्म' को तज कर देश के निर्माण में अपनी भागीदारी निभायें. हमारी सक्रीय भागीदारी से ही आता हुआ परिवर्तन समाज के हर वर्ग, हर आदमी तक पहुंच सकेगा. ●

वर्ष २००३ में 'कथाबिंब' में प्रकाशित कहानियों पर पाठकों के अभिमत आमंत्रित हैं. इस वर्ष से यह प्रतियोगिता ***'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार'*** के रूप में जानी जायेगी. पाठकों से विशेष आग्रह है कि कृपया अधिक से अधिक संख्या में हमें अपने अभिमत भेजें ताकि अपने में अनूठी इस प्रतियोगिता को सफल बनाया जा सके. ●

*सभी पाठकों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. **यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव है तो कृपया हमें लिखें.***

अरविंद

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

बराबर (पा.) - ए. पी. अकेला, ५ यतीश बिजनेस सेंटर, इर्ला सोसायटी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००९ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१
दाल-रोटी (मा.) - अक्षय जैन, १३ रश्मन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई - ४०० ०८०
मधुमति (मा.) - वेदव्यास, राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरन मगरी, सेक्टर-४, उदयपुर ३१३ ००२
वागर्थ (मा.) - विजय दास, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७
समाज प्रवाह (मा.) - मधुश्री काबरा, गणेश बाग, जवाहर लाल नेहरू रोड, मुलुंड (प.), मुंबई ४०० ०८०
साहित्य अमृत (मा.) - विद्यानिवास मिश्र, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२
साहित्य क्रांति (मा.) - अनिरुद्ध सिंह सेंगर 'आकाश,' भार्गव कॉलोनी, गुना ४७३ ००१ (म. प्र.)
शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१
शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९
अरावली उद्घोष (त्रै.) - बी. पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४
अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३
अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, डी-१३१ रमेश विहार, निकट ज्ञान सरोवर, अलीगढ़ (उ. प्र.)
असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड़ुई, पो. पद्मूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)
अक्षरा (त्रै.) - विजय कुमार देव, मं. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२
आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया ४६१ ७७५ (म. प्र.)
अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, अंचल भारती प्रिंटिंग प्रेस, रा. औ. आस्थान, गोरखपुर मार्ग, देवरिया - २७४ ००१
अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४
अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४
कृति ओर (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१
कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३
कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१
कारवां (त्रै.) - कपिलेश भोज, पो. सोमेश्वर, अल्मोड़ा - २६३ ६३७
कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', प्लानिंग कॉलोनी, अलीगढ़ (उ. प्र.)
कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१
गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२
तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१
तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१
दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां", मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२
दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सदाना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)
दीर्घा (त्रै.) - डॉ. विनय, २५ बैंग्लो रोड, कमला नगर, दिल्ली ११० ००७
द्वीप लहरी (त्रै.) - डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, हिंदी साहित्य कला परिषद, पोर्ट ब्लेयर ७४४ १०१
डांडी-कांटी (त्रै.) - मधुसिंह बिष्ट, भगवान नगर, नलपाड़ा, सैंडोज बाग, कापुर बावड़ी, ठाणे ४०० ६०७
निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२
निष्कर्ष (त्रै.) - गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर - २२८ ००१
परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६
पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८
प्रगतिशील आकल्प (त्रै.) - डॉ. शोभनाथ यादव, पंकज क्लासेज, पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग, जोगेश्वरी (पू.), मुंबई ४०० ०६०
प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७
प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६
पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, निराला नगर, गोशाला रोड, मुजफ्फरपुर ८४२ ००२ (बिहार)
पुरवाई (त्रै.) - पद्मेश गुप्त, (भारतीय संपर्क : ऋचा प्रकाशन, डी-३६ साउथ एक्सटेंशन, पार्ट-१, नयी दिल्ली ११० ०४९
भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, बालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८
मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१
मुहिम (त्रै.) - बच्चा यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१
युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबू, १८/७९५/एफ/८-ए, तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)

युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५
वर्तमान जनगाथा (त्रै.) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४
वर्तमान संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, टैगोर हिल रोड, मोराबादी, रांची ८३४ ००८
विषय वस्तु (त्रै.) - धर्मेंद्र गुप्त, २७४ राजधानी एन्क्लेव, रोड नं. ४४, शकूर बस्ती, दिल्ली - ११० ०३४
संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४
समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७
साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१
सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१
सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ ब्ल्यू ओसन, ब्ल्यू एंपायर कॉम्पलेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७
संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/'ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई - ४०११०५
सही समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ई-५०३, गोकुल रेजीडेंसी दत्तानी पार्क, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पू.), मुंबई - ४०० १०१
स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९
शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं. १६४, आसनसोल ७१३३०१
शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़
शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२
हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२
अविरल मंथन (अ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०
कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१
पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८बी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०
सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४
समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४
सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

विजय वर्मा मेमोरियल ट्रस्ट (मुंबई)

वर्ष २००३ का विजय वर्मा कथा सम्मान

श्री आनंद हर्षुल को कथासंग्रह 'पृथ्वी को चंद्रमा' के लिए

तथा

हेमंत स्मृति कविता पुरस्कार

श्री कृष्ण मोहन झा को

दिल्ली में, विश्व पुस्तक मेले के दौरान आयोजित एक कार्यक्रम में प्रदान किये गये.

कथा (यू.के.) सम्मान - वर्ष २००४

दसवां अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान

श्री विभूति नारायण राय

को उनके **'तबादला'** उपन्यास पर

तथा

इस वर्ष का पद्मानंद साहित्य सम्मान

सुश्री अचला शर्मा

को रेडियो नाटकों की उनकी पुस्तकों **'जड़ें'** एवं **'पासपोर्ट'**

पर २६ जून २००४ में नेहरु सेंटर, लंदन में दिया जायेगा.

: प्राप्ति-स्वीकार :

मुझे बाहर निकालो (कहानी संग्रह) : **गोविंद मिश्र**, राधाकृष्ण प्रकाशन, जी-१७, जगतपुरी, दिल्ली-११००५७. मू. १५०/-
गंगु आज़ाद (क.सं.) : **सिद्धेश**, प्रतिध्वनि, ३१ सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट, कोलकाता-७००००७. मू. १५०/-
औरत होने का गुनाह (क. सं.) : **सुभाष नीरव**, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. १००/-
परिचय (क. सं.) : **जयंत**, फर्स्ट इम्प्रेशन, हीवेट रोड, जॉनसेन गंज, इलाहाबाद. मू. ३०/-
सरोज की सरगम (उपन्यास) : **राजेंद्र कुमार रस्तोगी**, पांचाल प्रकाशन, ११० बी, सिविल लाइन्स, बरेली-२४३००१. मू. ५०/-
अंधे की आंख (उपन्यास) : **राजेंद्र कुमार रस्तोगी**, पांचाल प्रकाशन, ११० बी, सिविल लाइन्स, बरेली-२४३००१. मू. ३०/-
सच के सिवा (ल. सं.) : **जसबीर चावला**, उड़ान पब्लिकेशन्स, मानसा १५१५०५. मू. २५/-
उस शाम के बाद (ल. सं.) : **दामोदर मोदी 'दास'**, नागरी बहराइच, बंदरिया बाग, सूफीपुरा, बहराइच-२७१८०१. मू. ४०/-
गमलों में गुलाब (निबंध) : **रमेश नीलकमल**, मीनाक्षी प्रकाशन, एम.बी. ३२/२ बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. २५/-
किताब के भीतर किताब (समीक्षा) : **रमेश नीलकमल**, मीनाक्षी प्रकाशन, एम.बी. ३२/२ बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-९२. मू. २५/

कवियों पर कविता (कविता) : **रमेश नीलकमल**, मीनाक्षी प्रकाशन, एम.बी. ३२/२ बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-९२. मू. २५/-
पांडवप्रिया (खंड काव्य) : **कांतिलाल ठाकरे**, दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली-११००३५. मू. १५०/
यात्रा जारी है (कविता सं.) : **दुर्गा प्रसाद झाला**, 'पहचान', साहित्य कला संस्कृति संस्थान, शाजापुर-४६५००१. मू. ५०/-
तुम्हीं कोई नाम दो (का. सं.) : **वीरेंद्र सिंह गूंबर**, अग्नि प्रकाशन, ए-७५३, डी. डी. ए. कॉलोनी, चौखंडी, नयी दिल्ली-१८. मू. ३०/-
चांद का सफर (शायरी) : **डॉ. गणेश गायकवाड**, ऋतुजा प्रकाशन, सुवर्ण नगर, बुलढाणा. मू. २४/-
सूनी राहों पर (कविता संग्रह) : **मदन मोहन उपेंद्र**, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा-२८१००१. मू. ९०/-
जाड़े की धूप (कविता-संग्रह) : **उर्मिल जैन**, आधुनिक प्रकाशन, २९८२ गली, शिव सहायमल, बल्लीमारान, दिल्ली-६. मू. १२५/-
विष में अमृत (ग़ज़ल संग्रह) : **अक्षय गोजा**, सुकीर्ति प्रकाशन, डी. सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल-१३६०२७. मू. ८०/-
आत्म विजय की ओर (क. सं.) : **अक्षय गोजा**, सुरेंद्र कुमार एंड सन्ज़, ३०/२१-२२A, गली-९, विश्वास नगर, शाहदरा-११००३२. मू. १००/-
एक नदी प्यासी (गीत संग्रह) : **अशोक अंजुम**, संवेदना प्रकाशन, ट्रक गेट, कासिमपुर, अलीगढ़-२०२१२७. मू. ८०/-
साहित्य का मर्म (निबंध) : **डॉ. परमलाल गुप्त**, पीयूष प्रकाशन, नमस्कार, शारदा नगर, बस स्टैंड के पीछे, सतना-४८५ ००१. मू. ५०/-
बरसात दर्द (हाइकू संग्रह) : **श्याम खरे**, साहित्य संगम, 'श्रमफल', १५२०, सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९. मू. २०/-

---

'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

तुम मेरे नौकर (फिल्मी कहानी) : **पी. एच. दासर**, मू. ३५१/-
मेरी आवाज़ (उपन्यास) : **उर्वशी जोषी**, मू. ६०/-
आधुनिक मीना (उपन्यास) : **कीर्ति परदेशी**, मू. ६०/-
मैं, मिट्टी और फूल (का. सं.) : **हरिश्चंद्र**, मू. १००/-
उफनता सागर (का. सं.) : **मुहम्मद मुस्ताक**, मू. ७५/-
विरोधाभास और विनोदाभास (का. सं.) : **विजयकुमार भटनागर 'विजय'**, मू. १००/-
दर्पण (क. सं.) : **लालमनी विश्वकर्मा**, मू. ५०/-
मन मंदिर (भ. सं.) : **लोचन सक्सेना**, मू. १००/-
अंतःभाव (क. सं.) : **विपुल लखनवी (अमूल्य)**

'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार-२००३'

अभिमत पत्र

वर्ष २००३ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक / रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस ***अभिमत पत्र*** का प्रयोग करें अथवा आठ कहानियों का क्रम अलग से **एक पोस्टकार्ड** पर भी लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही प्रथम (१००० रु.- एक), द्वितीय (७५० रु. - दो) व प्रोत्साहन (५०० रु. के तीन) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें **'कथाबिंब'** की **त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रू.)** प्रदान की जायेगी. ये पुरस्कार, इस वर्ष से **'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार'** के नाम से जाने जायेंगे. **'कथाबिंब'** ही एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया है. इसकी सफलता इसी में है कि ज्यादा से ज्यादा पाठक अपना मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. **चंद्र-ग्रहण** - *राजीव सिंह*	
२. **रावलपिंडी एक्सप्रेस** - *सुधीर अग्निहोत्री*	
३. **बिटिया** - *डॉ. किसलय पंचोली*	
४. **जानवर और आदमी** - *डॉ. विवेक द्विवेदी*	
५. **उर्मिला की आंखों में** - *जयनारायण*	
६. **गुलदस्ते** - *उर्मिल गुप्ता*	
७. **मनी ऑर्डर** - *उत्तम कांबळे*	
८. **नामांतरण** - *रामनाथ शिवेंद्र*	
९. **लगाव** - *डॉ. भगीरथ बड़ोले*	
१०. **पत्थर की अहिल्या** - *उर्मि कृष्ण*	
११. **प्रेत-मुक्ति** - *डॉ. वासुदेव*	
१२. **अपना नीड़ - अपना आसमान** - *गोवर्धन यादव*	
१३. **लावारिस** - *परशु प्रधान*	
१४. **जब अरुषि कहेगी ...!** - *अलका अग्रवाल सिगतिया*	
१५. **पानी के रंग** - *डॉ. दामोदर खड़से*	
१६. **वध** - *डॉ. निरुपमा राय*	
१७. **बरगद** - *सत्तार मियां साहिल*	
१८. **पायदान पर** - *प्रदीप बिहारी*	
१९. **स्पर्श** - *संजीव निगम*	

VENUS
वीनस की भक्तिमय प्रस्तुति VCD
सीडी में अयोध्या के प्रमुख स्थानो व संतो के दर्शन

भगवान (बृहद अयोध्या दर्शन)
श्री राम की अयोध्या

गायक : हरि ओम शरण, अनूप जलोटा, नंदिनी शरण, निशा चतुर्वेदी, सुजीत और पामेला जैन

संगीत : त्रिवेणी भवानी–रोहित सिन्हा

निवेदन : हरीश भीमाणी एवं आनंद सिंह

लेखक/गीतकार/निर्देशक : पं. किरण मिश्र, अयोध्यावासी

VCD सीर्फ Rs.65/- कॅसेट सीर्फ Rs.32/-

VCD और कॅसेट सभी जगह उपलब्ध

वीनस की प्रस्तुती

जय श्री राम

अयोध्या दर्शन

गीत : पं. किरण मिश्र अयोध्यावासी

स्वर : निशा चतुर्वेदी, सुजीत एवं साथी

VENUS

कॅसेट्स सभी जगह पर उपलब्ध

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

द्वारा प्रकाशन के २४ वर्ष पूर्ण करने पर शुभकामनाएं

- एक शुभेच्छु

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

With Best Compliments From :

T. A. CORPORATION

LABORATORY CHEMICALS • INDUSTRIAL CHEMICALS
SILICA WARES • INSTRUMENTS • GLASS WARES
MERCK, BDH, PRABHAT, FLUKA, SIGMA, ALDRICH

* * * * * *

8, Dewan Niketan,
Chembur Naka, Chembur,
Mumbai - 400 071

Tel.: 022-2522 3613, 5597 4515,
Mobile : 9869074305,
Tel.Fax : 2522 3631
E-mail : tac@vsnl.com

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ २३४८ व २५२१ ६२८४.